क्रांति सूत्र

दो किताबों में प्रकाशन संबंधी सूचना इस लिंक पर दखिए - wiki.

Note: Read info about republishing is on wiki.

Kranti Sutra (क्रांति सूत्र _) - 4 Talks, Later on compiled in Sambhog Se Samadhi Ki Or.

Kranti Sutra (क्रांति सूत्र _) (2) - 23 small Articles. Note: Preface is part of Article #10.

अनुक्रम

1. सिद्धांत , शास्त्र और वाद से मुक्ति 2
2. भीड़ से , समाज से --दूसरों से मुक्ति 13
3. दमन से मुक्ति 28
4. न भोग , न दमन--वरन जागरण 41

क्रांति सूत्र
पहला प्रवचन

सिद्धांत, शास्त्र और वाद से मुक्ति

मेरे प्रिय आत्मन्!
अभी-अभी सूरज निकला। सूरज के दर्शन करता था। देखा आकाश में दो पक्षी उड़े जाते हैं। आकाश में न तो कोई रास्ता है, न कोई सीमा है, न कोई दीवाल है, न उड़ने वाले पक्षियों के कोई चरण-चिह्न बनते हैं। खुले आकाश में, जिसकी कोई सीमाएं नहीं, उन पक्षियों को उड़ता देख कर मेरे मन में एक सवाल उठाः क्या आदमी की आत्मा भी इतने ही खुले आकाश में उड़ने की मांग नहीं करती है? क्या आदमी के प्राण भी नहीं तड़पते हैं सारी सीमाओं के ऊपर उठ जाने को--सारे बंधन तोड़ देने को? सारी दीवालों के पार--वहां, जहां कोई दीवाल नहीं; वहां, जहां कोई फासले नहीं; वहां, जहां कोई रास्ते नहीं; वहां, जहां कोई चरण-चिह्न नहीं बनते--उस खुले आकाश में उठ जाने की मनुष्य की आत्मा की भी प्यास नहीं है?
उस खुले आकाश का नाम ही परमात्मा है।
लेकिन आदमी तो पैदा होता है, और बंधनों में बंध जाता है। चाहे पैदा कोई स्वतंत्र होता हो, लेकिन बहुत सौभाग्यशाली लोग ही स्वतंत्र जीते हैं; और बहुत कम सौभाग्यशाली लोग स्वतंत्र होकर मर पाते हैं। आदमी पैदा तो स्वतंत्र होता है, और फिर निरंतर परतंत्र होता चला जाता है। किसी आदमी की आत्मा परतंत्र नहीं होना चाहती है, फिर भी आदमी परतंत्र होता चला जाता है! तो ऐसा प्रतीत होता है कि शायद हमने परतंत्रता की बेड़ियों को फूलों
से सजा रखा है; शायद हमने परतंत्रता को स्वतंत्रता के नाम दे रखे हैं; शायद हमने कारागृहों को मंदिर समझ रखा है। और इसीलिए यह संभव हो सका है कि प्रत्येक आदमी के प्राण स्वतंत्र होना चाहते हैं, और प्रत्येक आदमी परतंत्र ही जीता है और मरता है! बल्कि, ऐसा भी दिखाई पड़ता है कि हम अपनी परतंत्रता की रक्षा भी करते हैं! अगर परतंत्रता पर चोट हो, तो हमें तकलीफ भी होती है, पीड़ा भी होती है! अगर कोई हमारी परतंत्रता तोड़ देना चाहे, तो वह हमें दुश्मन भी मालूम होता है!
परतंत्रता से आदमी का ऐसा प्रेम क्या है? नहीं, परतंत्रता से किसी का
भी प्रेम नहीं है। लेकिन परतंत्रता को हमने स्वतंत्रता के शब्द और वस्त्र ओढ़ा रखे हैं। एक आदमी अपने को हिंदू कहने में जरा भी अनुभव नहीं करता कि मैं अपनी गुलामी की सूचना कर रहा हूं। एक आदमी अपने को मुसलमान कहने में जरा भी नहीं सोचता कि मुसलमान होना मनुष्यता के ऊपर दीवाल बनानी है। एक आदमी किसी वाद में, किसी संप्रदाय में, किसी देश में अपने को बांध कर कभी भी नहीं सोचता कि मैंने अपना कारागृह अपने हाथों से बना लिया है। बड़ी चालाकी, बड़ा धोखा आदमी अपने को देता रहा है। और सबसे बड़ा धोखा यह है कि हमने कारागृहों को सुंदर नाम दे दिए हैं;, हमने बेड़ियों को फूलों से सजा दिया है; और जो हमें बांधे हुए हैं, उन्हें हम मुक्तिदायी समझ रहे हैं!
यह मैं पहली बात आज कहना चाहता हूंः जो लोग भी जीवन में क्रांति चाहते हैं, सबसे पहले उन्हें समझ लेना होगा कि बंधा हुआ आदमी कभी भी जीवन की क्रांति से नहीं गुजर सकता है। और हम सारे ही लोग बंधे हुए लोग हैं। यद्यपि हमारे हाथों पर जंजीरें नहीं हैं, हमारे पैरों में बेड़ियां नहीं हैं; लेकिन हमारी आत्माओं पर बहुत जंजीरें हैं, बहुत बेड़ियां हैं। हाथ-पैर पर बेड़ियां पड़ी हों तो दिखाई पड़ जाएंगी, आत्मा पर जंजीरें पड़ी हों तो दिखाई भी नहीं पड़तीं। अदृश्य बंधन इस बुरी तरह बांध लेते हैं कि उनका पता भी नहीं चलता और जीवन भी हमारा एक कैद बन जाता है। अदृश्य बंधनों में सबसे अदभुत बंधन सिद्धांतों के, शास्त्रों के और शब्दों के हैं।
एक गांव में एक दिन सुबह-सुबह बुद्ध का प्रवेश हुआ। गांव के द्वार पर
ही एक व्यक्ति ने बुद्ध को पूछा, आप ईश्वर को मानते हैं? मैं नास्तिक हूं, मैं ईश्वर को नहीं मानता हूं। आपकी क्या दृष्टि है?
बुद्ध ने कहा, ईश्वर? ईश्वर है। ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ भी सत्य नहीं है।

बुद्ध गांव के भीतर पहुंचे। एक दूसरे व्यक्ति ने बुद्ध को कहा, मैं आस्तिक हूं, मैं ईश्वर को मानता हूं। आप ईश्वर को मानते हैं?
बुद्ध ने कहा, ईश्वर? ईश्वर है ही नहीं, मानने का कोई सवाल नहीं उठता। ईश्वर एक असत्य है!
पहले आदमी ने पहला उत्तर सुना था, दूसरे आदमी ने दूसरा उत्तर सुना था। लेकिन बुद्ध के साथ एक भिक्षु था, आनंद। उसने दोनों उत्तर सुने, वह बहुत हैरान हो गया! सुबह ही बुद्ध ने कहा कि ईश्वर है! दोपहर बुद्ध ने कहा, ईश्वर नहीं है! आनंद बहुत चिंतित हो गया कि बुद्ध का प्रयोजन क्या है? लेकिन सांझ फुरसत होगी, रात सब लोग विदा हो जाएंगे, तब पूछ लेगा।
लेकिन सांझ तो मुश्किल और बढ़ गई। एक तीसरे आदमी ने आकर पूछा कि मुझे कुछ भी पता नहीं है कि ईश्वर है या नहीं। मैं आपसे पूछता हूं, आप मानते हैं--ईश्वर है? या नहीं?
बुद्ध उसकी बात सुन कर चुप रह गए और उन्होंने कोई भी उत्तर न दिया!
रात जब सारे लोग विदा हो गए, तो आनंद बुद्ध को पूछने लगा कि मैं बहुत मुश्किल में पड़ गया हूं। मुझे बहुत झंझट में डाल दिया आपने। सुबह कहा, ईश्वर है; दोपहर कहा, नहीं है; सांझ चुप रह गए। मैं क्या समझूं?
बुद्ध ने कहा, उन तीनों उत्तर में कोई भी उत्तर तेरे लिए नहीं दिया गया था। तूने वे उत्तर क्यों लिए? जिनको उत्तर दिए गए थे, उनके लिए दिए गए थे। तुझे तो कोई उत्तर नहीं दिया गया था।
आनंद ने कहा, क्या मैं अपने कान बंद रखता? मैंने तीनों बातें सुन ली हैं। यद्यपि उत्तर मुझे नहीं दिए गए थे, लेकिन देने वाले तो आप एक थे। और आपने तीन उत्तर दिए!
बुद्ध ने कहा, तू नहीं समझा। मैं उन तीनों की मान्यताएं तोड़ देना चाहता था। सुबह जो आदमी आया था, वह नास्तिक था। जो नास्तिकता में बंध गया है, उस आदमी की आत्मा भी परतंत्र हो गई है। मैं चाहता था, वह अपनी जंजीर से मुक्त हो जाए। उसकी जंजीर तोड़ देने को मैंने कहा--ईश्वर है। ईश्वर है, मैंने सिर्फ इसलिए कहा कि वह जो नहीं मान कर बैठा है, अपनी जगह से हिल जाए, उसकी जड़ें उखड़ जाएं, उसकी दीवाल गिर जाए, वह फिर से सोचने को मजबूर हो जाए। वह चुप हो गया है। उसने सोचा है कि यात्रा समाप्त हो गई। और जो भी आदमी समझ लेता है कि यात्रा समाप्त हो गई, वह कारागृह में पहुंच जाता है। जीवन है अनंत यात्रा, वह यात्रा कभी भी समाप्त नहीं होती।
लेकिन हिंदू की यात्रा समाप्त हो गई है, बौद्ध की यात्रा समाप्त हो गई है, जैन की यात्रा समाप्त हो गई है, गांधीवादी की यात्रा समाप्त हो गई है, मार्क्सवादी की यात्रा समाप्त हो गई है; जिसको भी वाद मिल गया है, उसकी यात्रा समाप्त हो गई है। उसने सत्य को पा लिया, वह सत्य को उपलब्ध हो गया है; अब आगे, आगे खोज समाप्त हो गई है। सभी संप्रदायों की, सभी धर्मों की, सभी पकड़ वालों की खोज समाप्त हो जाती है।
बुद्ध ने कहा, मैं उसे तोड़ देना चाहता था उसकी जंजीरों से, ताकि वह फिर
से पूछे, वह फिर से खोजे, वह आगे बढ़ जाए।
दोपहर जो आदमी आया था, वह आदमी आस्तिक था। वह मान कर बैठ गया था कि ईश्वर है। उससे मुझे कहना पड़ा कि ईश्वर नहीं है। ईश्वर है ही नहीं। ताकि मैं उसकी भी जंजीरों को ढीला कर सकूं, उसके मत को भी तोड़ सकूं। क्योंकि सत्य को वे ही लोग उपलब्ध होते हैं, जिनका कोई मत नहीं।
और सांझ जो आदमी आया था, उसका कोई मत नहीं था। उसने कहा, मुझे कुछ भी पता नहीं है कि ईश्वर है या नहीं। इसलिए मैं भी चुप रह गया। मैंने उससे कहा कि तू चुप रह कर खोज, मत की तलाश मत कर, सिद्धांत की तलाश मत कर। चुप हो। इतना चुप हो जा कि सारे शब्द खो जाएं। तो शायद जो है, उसका तुझे पता चल सके। बुद्ध के साथ आप भी रहे होते तो मुश्किल में पड़ गए होते। अगर एक उत्तर सुना होता तो शायद बहुत मुसीबत न होती। लेकिन अगर तीनों उत्तर सुने होते, तो बहुत मुसीबत हो जाती।
बुद्ध का प्रयोजन क्या है? बुद्ध चाहते क्या हैं?
बुद्ध आपको कोई सिद्धांत नहीं देना चाहते; बुद्ध आपके जो सिद्धांत हैं, उनको भी छीन लेना चाहते हैं। बुद्ध आपके लिए कोई कारागृह नहीं बनाना

चाहते; आपका जो बना कारागृह है, उसको भी गिरा देना चाहते हैं। ताकि वह खुला आकाश जीवन का, खुली आंखों से देखने की क्षमता उपलब्ध हो सके।
लेकिन इससे क्या होता है! बुद्ध चिल्लाते रहेंगे कि तोड़ दो सिद्धांत,
और बुद्ध के पीछे लोग इकट्ठे हो जाएंगे और बुद्ध का सिद्धांत भी निर्मित कर लेंगे। दुनिया में जिन थोड़े से लोगों ने मनुष्य को मुक्त करने की चेष्टा की है--मनुष्य अजीब पागल है--उन्हीं लोगों को उसने अपना बंधन बना लिया! चाहे फिर वह बुद्ध हों, चाहे महावीर हों, चाहे मार्क्स हो और चाहे गांधी हों--चाहे कोई भी आदमी हो--जो भी मनुष्य को मुक्त करने की चेष्टा करता है, आदमी अजीब पागल है, उसी को अपना बंधन बना लेता है! उसी को अपनी जंजीर बना लेता है! और जिंदा आदमी तो कोशिश भी कर सकता है कि उसकी जंजीर न बने, मुर्दा आदमी क्या कर सकता है?
मरे हुए नेता, मरे हुए संत बहुत खतरनाक सिद्ध होते हैं--अपने कारण नहीं, आदमी की आदत के कारण। दुनिया के सभी महापुरुष, जो कि मनुष्य को मुक्त कर सकते थे, कोई भी मनुष्य को मुक्त नहीं कर पाया, मनुष्य ने उनको ही अपने बंधन में रूपांतरित कर लिया। इसलिए मनुष्य के इतिहास में एक अजीब घटना घटी हैः जो भी संदेश लेकर आता है मुक्ति का, हम उसको ही अपना एक नया कारागृह बना लेते हैं! इस भांति जितने मुक्ति के संदेश दुनिया में आए, उतने रंग-रूप की जंजीरें दुनिया में तय और निर्मित होती चली गईं। आज तक यही हुआ है। क्या आगे भी यही होगा? अगर आगे भी यही होगा तो फिर मनुष्य के लिए कोई भविष्य दिखाई नहीं पड़ता है।
लेकिन ऐसा मुझे नहीं लगता कि जो आज तक हुआ है, वह आगे भी होना जरूरी है। वह आगे होना जरूरी नहीं है। यह संभव हो सकता है कि जो आज तक हुआ है, वह आगे न हो। और न हो सके तो मनुष्यता मुक्त हो सकती है। लेकिन मनुष्यता मुक्त हो या न हो, एक-एक मनुष्य को भी अगर मुक्त होना है, तो उसे अपने चित्त पर, अपने मन पर, अपनी आत्मा पर लगाई सारी जंजीरों को तोड़ देने की हिम्मत जुटानी पड़ती है।
जंजीरें बहुत मधुर हैं, बहुत सुंदर हैं, सोने की हैं, इसलिए और भी कठिनाई हो जाती है। महापुरुषों से मुक्त होना बहुत कठिन मालूम पड़ता है, सिद्धांतों से मुक्त होना बहुत कठिन मालूम पड़ता है, शास्त्रों से मुक्त होना बहुत कठिन मालूम पड़ता है। और अगर कोई कहे, तो वह आदमी दुश्मन मालूम होगा। क्योंकि हम इन सारी चीजों को मान कर निश्चिंत हो गए हैं; अब खोजने की और कोई जरूरत न रही। और अगर कोई आदमी कहता है, इनसे मुक्त हो जाओ! तो फिर खोजने की जरूरत शुरू हो जाती है; फिर मंजिल खो जाती है; फिर रास्ता सामने आ जाता है। रास्ते पर चलने में तकलीफ मालूम पड़ती है; मंजिल पर पहुंच जाने में आराम मालूम पड़ता है। क्योंकि मंजिल पर पहुंचने के बाद फिर कोई यात्रा नहीं, कोई श्रम नहीं। मनुष्य ने अपने आलस्य के कारण झूठी मंजिलें तय कर ली हैं। और हमने सब मंजिलें पकड़ रखी हैं।
पहली बात, पहला सूत्र जीवन-क्रांति का मैं आपसे कहना चाहता हूं, और वह यहः एक स्वतंत्र चित्त चाहिए। एक मुक्त चित्त चाहिए।
एक बंधा हुआ, कैप्सूल के भीतर बंद, दीवालों के भीतर बंद, पक्षपातों के भीतर बंद, वाद और सिद्धांत और शब्दों के भीतर बंद चित्त कभी भी जीवन की क्रांति से नहीं गुजर सकता है।
और अभागे हैं वे लोग जिनका जीवन एक क्रांति नहीं बन पाता; क्योंकि वे वंचित ही रह जाते हैं इस सत्य को जानने से कि जीवन में क्या छिपा था! क्या था राज, क्या था आनंद, क्या था सत्य, क्या था संगीत, क्या था सौंदर्य--उस सबसे ही वे वंचित रह जाते हैं!
मैंने सुना है, एक सम्राट ने अपनी सुरक्षा के लिए एक महल बनाया था। उसने ऐसा इंतजाम किया था कि महल के भीतर कोई दुश्मन न आए। उसने सारे द्वार-दरवाजे बंद कर दिए थे। सिर्फ एक दरवाजा महल में रखा था। और दरवाजे पर हजार नंगी तलवारों का पहरा था। एक छोटा छेद भी नहीं था मकान में। सारे महल के द्वार-दरवाजे बंद कर दिए थे और फिर वह बहुत निश्चिंत हो गया था। अब किसी खिड़की से, किसी द्वार से, दरवाजे से किसी डाकू की, किसी हत्यारे की, किसी दुश्मन के आने की कोई संभावना न थी।

पड़ोस के राजा ने सुना, वह उसके महल को देखने आया। वह भी उसके महल को देख कर बहुत प्रसन्न हुआ।
आदमी ऐसा पागल है, बंद दरवाजों को देख कर बहुत प्रसन्न होता है।
क्योंकि बंद दरवाजों को वह समझता है--सुरक्षा, सिक्योरिटी, सुविधा।
उस राजा ने भी महल देख कर कहा, हम भी एक ऐसा महल बनाएंगे। यह महल तो बहुत सुरक्षित है। इस महल में तो निश्चिंत रहा जा सकता है।
जब पड़ोसी राजा द्वार पर आकर विदा हो रहा था और इस मित्र राजा के महल की प्रशंसा कर रहा था, तब सड़क पर बैठा हुआ एक बूढ़ा भिखारी जोर से हंसने लगा। उस भवन के मालिक ने पूछा, तू हंसता क्यों है? कोई भूल तुझे दिखाई पड़ती है? उस भिखारी ने कहा, एक भूल रह गई है, महाराज! जब आप यह मकान तैयार करवाते थे, तभी मुझे लगता था कि एक भूल रह गई है।
उस सम्राट ने कहा, कौन सी भूल?
उस भिखारी ने कहा, एक दरवाजा आपने रखा है, यही भूल रह गई है। यह दरवाजा
और बंद कर लें, और भीतर हो जाएं, तो फिर आप बिल्कुल सुरक्षित हो जाएंगे। फिर कोई भी किसी हालत में भीतर नहीं पहुंच सकता है।
उस सम्राट ने कहा, पागल, फिर तो यह मकान कब्र हो जाएगा। अगर मैं एक दरवाजा और बंद कर लूं, तो मैं मर जाऊंगा भीतर। फिर तो यह मौत हो जाएगी।
उस भिखारी ने कहा, इतना आपको समझ आता है कि एक दरवाजा और बंद कर लेने
से आप मर जाएंगे, क्या आपको यह समझ में नहीं आता कि जितने दरवाजे आपने बंद किए हैं, उसी मात्रा में आप मर गए हैं? एक-एक दरवाजा आपने बंद किया है, उसी मात्रा में जीवन से आपके संबंध टूट गए हैं। अब एक दरवाजा बचा है, तो थोड़ा सा संबंध बचा है, आप थोड़े से जीवित हैं। इसको भी बंद कर देंगे, तो बिल्कुल मर जाएंगे। लेकिन यह मकान कब्र है जिसमें एक दरवाजा है। यह दरवाजा और बंद हो जाए तो कब्र पूरी हो जाएगी। और अगर आपको यह लगता है कि एक दरवाजा बंद करने से मौत हो जाएगी, तो जो दरवाजे बंद हैं उनको खोल लें। और अगर मेरी बात समझें तो सब दीवालें गिरा दें, ताकि खुले सूरज के नीचे और खुले आकाश के नीचे पूरा जीवन उपलब्ध हो।
लेकिन शरीर के लिए मकान जरूरी है, और शरीर के लिए दीवालें भी जरूरी हैं। पर आत्मा के लिए न तो मकान जरूरी है और न दीवालें जरूरी हैं। लेकिन जिनके पास शरीर को छिपाने के लिए मकान नहीं, उन्होंने भी अपनी आत्मा को छिपाने के लिए दीवालें और मकान बना रखे हैं! जो खुले आकाश के नीचे सोते हैं, उनकी आत्माएं भी खुले आकाश में नहीं उड़ती हैं! जिनके शरीर पर वस्त्र नहीं हैं, उन्होंने भी आत्मा के लिए लोहे के वस्त्र पहना रखे हैं! और फिर आदमी पूछता है, हम दुखी क्यों हैं? फिर आदमी पूछता है, हम पीड़ित क्यों हैं? फिर आदमी पूछता है, आनंद कहां मिलेगा?
कभी परतंत्र चित्त को आनंद मिला है? कभी परतंत्रता ने सुख जाना है? कभी परतंत्र व्यक्ति कभी भी किसी भी स्थिति में सत्य को, सौंदर्य को उपलब्ध हुआ है?
मैं एक घर में मेहमान था। एक बहुत प्यारी चिड़िया उस घर के लोगों ने कैद कर रखी थी। जिस पिंजड़े में वह चिड़िया बंद थी, वह चारों तरफ कांच से घिरा था। चिड़िया को बाहर का जगत दिखाई पड़ता होगा, लेकिन उस कांच की दीवाल के भीतर बंद चिड़िया को पता भी नहीं हो सकता कि बाहर एक खुला आकाश है, और उस बाहर खुले आकाश में उड़ने का भी आनंद है। शायद वह चिड़िया उड़ने का ख्याल भी भूल गई होगी। शायद उसके पंख किसलिए हैं, यह भी उसे पता नहीं रहा होगा। और अगर आज उसे बाहर भी कर दिया जाए, तो शायद वह घबड़ाएगी और अपने सुरक्षित पिंजड़े में वापस आ जाएगी। उसके पास पंख किसलिए हैं, यह भी उस चिड़िया को पता नहीं है। शायद पंख उसे निरर्थक लगते होंगे, बोझ लगते होंगे। और उसे यह भी पता नहीं है कि उस खुले आकाश में सूरज की तरफ बादलों के पार उड़ जाने का भी एक आनंद है, एक जीवन है। वह उसे कुछ भी पता नहीं है।
उस चिड़िया को कुछ भी पता नहीं है; हमें पता है? हमने भी कांच की दीवालें बना रखी हैं। उन कांच की दीवालों के पार, बियांड, उनके अतीत भी कोई लोक है--जहां कोई सीमा नहीं छूटती; जहां आगे, और आगे अनंत विस्तार है; जहां सूरज है, जहां बादलों के अतीत आगे खुला आकाश है।

नहीं, हमें भी उसका कोई पता नहीं है। शायद हमें भी आत्मा एक बोझ मालूम पड़ती है। और हममें से बहुत से लोग अपनी आत्मा को खो देने की हर चेष्टा करते हैं। हमें आत्मा भी एक बोझ मालूम पड़ती है, इसलिए शराब पीकर आत्मा को भुला देने की कोशिश करते हैं, संगीत सुन कर भुला देने की कोशिश करते हैं। किसी तरह आत्मा भूल जाए, इसकी चेष्टा करते हैं। वह आत्मा भी एक बोझ है, जैसे उस चिड़िया को पंख बोझ मालूम होते होंगे। क्योंकि हमें पता नहीं कि एक आकाश है, जहां आत्मा भी पंख बन जाती है। और आकाश की एक उड़ान है, जिस उड़ान की उपलब्धि का नाम ही प्रभु है, परमात्मा है।
धर्म मनुष्य को मुक्त करने की कला है। अगर ठीक से कहूं तो धर्म मनुष्य
के जीवन में क्रांति लाने की कला है। इसलिए कायर कभी धार्मिक नहीं हो सकते। डरे हुए लोग, भयभीत लोग कभी धार्मिक नहीं हो सकते। बल्कि भयभीत और डरे लोगों ने जो धर्म पैदा किया है, वह धर्म जरा भी नहीं है। वह धर्म से बिल्कुल उलटी चीज है। वह अधर्म से भी बदतर है। क्योंकि अधार्मिक आदमी भी साहसी हो सकता है। और जो आदमी साहसी है, वह बहुत दिन तक अधार्मिक नहीं रह सकता। अधार्मिक आदमी भी विचारशील होता है। और जो आदमी विचारशील है, वह बहुत दिन तक अधार्मिक नहीं रह सकता।
रामकृष्ण के पास केशवचंद्र मिलने गए थे। केशवचंद्र विवाद करने गए थे रामकृष्ण से, रामकृष्ण की बातों का खंडन करने गए थे। सारे कलकत्ते में खबर थी कि चलें, केशवचंद्र की बातें सुनें! रामकृष्ण तो गांव के गंवार हैं, क्या उत्तर दे सकेंगे केशवचंद्र का? केशवचंद्र बड़ा पंडित है! बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गई थी। रामकृष्ण के शिष्य बहुत डरे हुए थे, केशव के सामने रामकृष्ण क्या बात कर सकेंगे! कहीं ऐसा न हो कि फजीहत हो जाए! सब तो मित्र डरे थे, लेकिन रामकृष्ण बार-बार द्वार पर आकर पूछते थे, केशव अभी तक आए नहीं?
एक भक्त ने कहा भी कि आप पागल होकर प्रतीक्षा कर रहे हैं! और आपको पता नहीं कि आप दुश्मन की प्रतीक्षा कर रहे हैं! वे आकर आपकी बातों का खंडन करेंगे। वे बहुत बड़े तार्किक हैं।
रामकृष्ण कहने लगे, वही देखने के लिए मैं आतुर हो रहा हूं; क्योंकि इतना तार्किक आदमी अधार्मिक कैसे रह सकता है, यही मुझे देखना है। इतना विचारशील आदमी कैसे धर्म के विरोध में रह सकता है, यही मुझे देखना है। यह असंभव है।
केशव आए, और केशव ने विवाद शुरू किया। केशव ने सोचा था, रामकृष्ण उत्तर देंगे। लेकिन केशव एक-एक तर्क देते थे और रामकृष्ण उठ-उठ कर गले लगा लेते थे; और आकाश की तरफ हाथ जोड़ कर किसी को धन्यवाद देते थे। थोड़ी देर में केशव बहुत मुश्किल में पड़ गए। उनके साथ आए लोग भी मुश्किल में पड़ गए। आखिर केशव ने पूछा कि आप करते क्या हैं? मेरी बातों का जवाब नहीं देते? और हाथ जोड़ कर आकाश में धन्यवाद किसको देते हैं?
रामकृष्ण ने कहा, मैंने बहुत चमत्कार देखे, यह चमत्कार मैंने नहीं देखा। इतना बुद्धिमान आदमी, इतना विचारशील आदमी धर्म के विरोध में कैसे रह सकता है? जरूर भगवान का चमत्कार है। इसलिए मैं उसको ऊपर धन्यवाद देता हूं। और तुमसे मैं कहता हूं कि तुम्हें मैं जवाब नहीं दूंगा, लेकिन जवाब तुम्हें मिल जाएंगे। क्योंकि जिसका चित्त इतना मुक्त होकर सोचता है, वह किसी तरह के बंधन में नहीं रह सकता। वह अधर्म के बंधन में भी नहीं रह सकता। झूठे धर्म के बंधन तुमने तोड़ डाले हैं, अब जल्दी ही अधर्म के बंधन भी टूट जाएंगे। क्योंकि विवेक अंततः सारे बंधन तोड़ देता है। और जहां सारे बंधन टूट जाते हैं, वहां जिसका अनुभव होता है, वही धर्म है, वही परमात्मा है। मैं कोई दलील न दूंगा। तुम्हारे पास दलील देने वाला बहुत अदभुत मस्तिष्क है। वह खुद ही दलील खोज लेगा।
केशव सोचते हुए वापस लौटे। और उस दिन रात में उन्होंने अपनी डायरी में लिखाः आज मेरा एक धार्मिक आदमी से मिलना हो गया। और शायद उस आदमी ने रूपांतरण शुरू कर दिया है। मैं पहली बार सोचता हुआ लौटा हूं। और उस आदमी ने मुझे कोई उत्तर भी नहीं दिया और मुझे विचार में डाल दिया है!

मनुष्य के पास विवेक है, लेकिन विवेक बंधन में है! और जो विवेक बंधन में है, वह सत्य तक नहीं पहुंच सकता है। हमें सोच लेना है--एक-एक व्यक्ति को--हमारा विवेक बंधन में तो नहीं है?
अगर मन में कोई भी संप्रदाय है, तो विवेक बंधन में है। अगर मन में कोई
भी शास्त्र है, तो विवेक बंधन में है। अगर मन में कोई भी महात्मा है, तो विवेक बंधन में है। और जब मैं यह कहता हूं तो लोग सोचते हैं, शायद मैं महात्माओं और महापुरुषों के विरोध में हूं।
मैं किसी के विरोध में क्यों होने लगा? मैं किसी के भी विरोध में नहीं हूं। बल्कि सारे महापुरुषों का काम ही यही रहा है कि आप बंध न जाएं। सारे महापुरुषों की आकांक्षा यही रही है कि आप बंध न जाएं। क्योंकि जिस दिन आपके बंधन गिर गए, आप भी वही हो जाएंगे जो महापुरुष हो जाते हैं। महापुरुष मुक्त हो जाता है। और हम अजीब पागल लोग हैं, हम उसी मुक्त महापुरुष के पीछे बंध जाते हैं!
समस्त वाद बांध लेते हैं। वाद से छूटे बिना जीवन में क्रांति नहीं होती है, नहीं हो सकती है।
लेकिन हमें ख्याल भी नहीं आता कि हम बंधे हुए लोग हैं। अगर मैं अभी कहूं कि हिंदू धर्म व्यर्थ है, या मैं कहूं कि इस्लाम व्यर्थ है, या मैं कहूं कि गांधीवाद से छुटकारा जरूरी है, तो आपके मन को चोट लगती है। अगर चोट लगती है तो आप समझ लेना कि आप बंधे हुए आदमी हैं। चोट किसको लगती है? चोट का कारण क्या है? चोट कहां लगती है हमारे भीतर? चोट वहीं लगती है जहां हमारे बंधन हैं। जिस चित्त पर बंधन नहीं है, उसे कोई भी चोट नहीं लगती। इस्लाम खतरे में है--तो वे जो इस्लाम के बंधन से बंधे हैं, खड़े हो जाएंगे युद्ध के लिए, संघर्ष के लिए! उनके छुरे बाहर निकल आएंगे! हिंदू धर्म खतरे में है--तो वे जो हिंदू धर्म के गुलाम हैं, वे खड़े हो जाएंगे लड़ने के लिए! और अगर कोई मार्क्स को कुछ कह दे, तो जो मार्क्स के गुलाम हैं, वे खड़े हो जाएंगे! और अगर कोई गांधी को कुछ कह दे, तो जो गांधी के गुलाम हैं, वे खड़े हो जाएंगे! लेकिन यह गुलामी चाहे किसी के साथ हो... मेरे साथ हो सकती है... ।
अभी मुझे बंबई में किसी ने कहा, कि किसी मेरे मित्र ने कुछ अखबार में मेरे संबंध में लेख लिखे होंगे, तो किन्हीं दो व्यक्तियों ने उन मित्र को कहीं रास्ते में पकड़ लिया और कहा कि अब अगर आगे लिखा तो गर्दन दबा देंगे! मुझे बंबई में किसी ने कहा। तो मैंने कहा कि जिन्होंने उनको पकड़ कर कहा कि गर्दन दबा देंगे, वे मेरे गुलाम हो गए, वे मुझसे बंध गए।
मैं अपने से नहीं बांध लेना चाहता हूं किसी को। मैं चाहता हूं कि प्रत्येक व्यक्ति किसी से बंधा हुआ न रह जाए। एक ऐसी चित्त की दशा हो कि हम किसी से बंधे हुए नहीं हैं। उसी हालत में एक क्रांति तत्काल होनी शुरू हो जाती है। एक एक्सप्लोजन, एक विस्फोट हो जाता है। जो आदमी किसी से भी बंधा हुआ नहीं है, उसकी आत्मा पहली दफे अपने पर खोल लेती है खुले आकाश में और उड़ने के लिए तैयार हो जाती है।
बंधे हुए आदमी का मतलब हैः पंख बंधे हैं जमीन से, पैर गड़े हैं जमीन में। उड़ेंगे कैसे? और फिर हम पूछेंगे कि चित्त दुखी है, अशांत है, परेशान है! आनंद कैसे मिले? परमात्मा कैसे मिले? सत्य कैसे मिले? मोक्ष कैसे मिले? निर्वाण कैसे मिले?
कहीं आकाश में नहीं है निर्वाण। कहीं दूर सात आसमानों के पार नहीं है मोक्ष। यहीं है और अभी है। और उस आदमी को उपलब्ध हो जाता है जो कहीं भी बंधा हुआ नहीं है। जिसकी कोई क्लिंगिंग नहीं है। जिसके हाथ किसी दूसरे के हाथ को नहीं पकड़े हुए हैं। जो अकेला है और अकेला खड़ा है। और जिसने इतना साहस और इतनी हिम्मत जुटा ली है कि अब वह किसी का अनुयायी नहीं है, किसी के पीछे चलने वाला नहीं है, किसी का अनुकरण करने वाला नहीं है। अब वह किसी का मानसिक गुलाम नहीं है, मेंटल स्लेवरी उसकी नहीं है।
लेकिन हम कहेंगे कि मैं जैन हूं, और कभी न सोचेंगे कि हम महावीर के मानसिक गुलाम हो गए! कहेंगे मैं कम्युनिस्ट हूं, और कभी न सोचेंगे कि हम

मार्क्स और लेनिन के मानसिक गुलाम हो गए! कहेंगे मैं गांधीवादी हूं, और कभी न सोचेंगे कि हम गांधी के गुलाम हो गए!
दुनिया में गुलामों की कतारें लगी हैं। गुलामी के नाम अलग-अलग हैं, लेकिन गुलामी कायम है। मैं गुलामी नहीं बदलना चाहता कि एक आदमी से छुड़ा कर दूसरे की गुलामी आपको पकड़ा दी जाए। उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। वह वैसे ही है, जैसे लोग मरघट लाश को ले जाते हैं कंधे पर रख कर, एक कंधा दुखने लगता है तो दूसरे कंधे पर रख लेते हैं। थोड़ी देर में दूसरा कंधा दुखने लगता है, फिर कंधा बदल लेते हैं।
आदमी गुलामियों में कंधे बदल रहा है। अगर गांधी से छूटता है तो मार्क्स से जकड़ जाता है; अगर महावीर से छूटता है तो मोहम्मद को पकड़ लेता है; अगर एक वाद से छूटता है तो फौरन पहले इंतजाम कर लेता है कि किसको पकडूंगा!
लोग मेरे पास पूछने आते हैं--कि आप कहते हैं यह गलत है; वह गलत है। आप हमें यह बताइए कि सही क्या है?
वे असल में यह पूछ रहे हैं कि फिर हम पकड़ें क्या, वह हमें बताइए। जब तक हमें पकड़ने को न हो, तब तक हम छोड़ेंगे नहीं!
और मैं आपसे कह रहा हूं, पकड़ना गलत है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आप क्या पकड़ें। मैं आपसे कह रहा हूं, पकड़ना गलत है--क्लिंगिंग एज सच! वह गांधी से है, बुद्ध से है या मुझसे है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। किसी से भी है! पकड़ने वाले चित्त का स्वरूप एक ही है कि पकड़ने वाला चित्त खाली नहीं रहना चाहता। वह चाहता है कहीं न कहीं मेरी मुट्ठी बंधी रहनी चाहिए। मुझे कोई सहारा होना चाहिए। और जब तक कोई आदमी किसी के साथ सहारा खोजता है, तब तक उसकी आत्मा के पंख खुलने की स्थिति में नहीं आते हैं। जब आदमी बेसहारा हो जाता है, सारे सहारे छोड़ देता है, सब सहारे छोड़ देता है, हेल्पलेस खड़ा हो जाता है, और जानता है कि मैं अकेला हूं--और यही सच है कि एक-एक आदमी बिल्कुल अकेला है--जिस दिन आदमी इस बात की तैयारी कर लेता है कि मैं अकेला हूं और जिस दिन मान लेता है कि खुले आकाश में कोई चरण-चिह्न नहीं हैं... ।
कहां हैं महावीर के चरण-चिह्न जिन पर आप चल रहे हैं? कहां हैं कृष्ण
के चरण-चिह्न? जीवन में कहीं कोई चिह्न नहीं बनते। सिर्फ आपकी स्मृति में कल्पना और ख्याल है। किसको पकड़े हैं आप? कहां है कृष्ण का हाथ? कहां हैं गांधी के चरण जिनको आप पकड़े हैं? सिर्फ आंख बंद करके सपना देख रहे हैं! सपने देखने से कोई आदमी मुक्त नहीं होता। न गांधी के चरण आपके हाथ में हैं, न कृष्ण के, न राम के। कोई चरण आपके हाथ में नहीं हैं। आप अकेले खड़े हैं। आंख बंद करके कल्पना कर रहे हैं कि मैं किसी को पकड़े हूं। जितनी देर तक आप यह कल्पना किए हुए हैं, उतनी देर तक आपकी अपनी आत्मा के जागरण का अवसर पैदा नहीं होगा। और तब तक आपके जीवन में वह क्रांति नहीं हो सकती, जो आपको सत्य के निकट ले आए। न जीवन में वह क्रांति हो सकती है कि जीवन के सारे पर्दे खुल जाएं, उसका रहस्य खुल जाए, उसकी मिस्ट्री खुल जाए और आप जीवन को जान सकें और देख सकें।
बंधा हुआ आदमी आंख पर चश्मे लगाए हुए जीता है। खिड़कियों में से, छेदों में से देखता है दुनिया को। जैसे कोई एक छेद कर ले दीवाल में और उसमें से देखे आकाश को! उसे जो भी दिखाई पड़ेगा, वह उस छेद की सीमा से बंधा होगा, वह आकाश नहीं होगा। जिसे आकाश देखना है, उसे दीवालों के बाहर आ जाना चाहिए। और कई बार कितनी छोटी चीजें बांध लेती हैं, हमें पता भी नहीं होता! रवींद्रनाथ एक रात नाव में यात्रा कर रहे थे। छोटी सी मोमबत्ती जला
कर कोई किताब पढ़ते रहे थे। आधी रात को थक गए, तब मोमबत्ती फूंक मार कर बुझा दी, किताब बंद की--एकदम देख कर हैरान हो गए! वह छोटा सा बजरा, नाव, उसमें बैठे थे। जैसे ही मोमबत्ती बुझी--चारों तरफ से पूर्णिमा की रात थी बाहर, उस मोमबत्ती के कारण पता ही नहीं चलता था कि बाहर पूर्णिमा की रात भी है। छोटी सी मोमबत्ती इतने बड़े चांद को रोक सकती है! मोमबत्ती के बुझते ही सारे चांद की किरणें बजरे के रंध्र-रंध्र, छिद्र-छिद्र से, खिड़की से, द्वार से भीतर आकर नाचने लगीं। रवींद्रनाथ भी उन किरणों के साथ खड़े होकर नाचने लगे। उस रात उन्होंने एक गीत गाया और उस गीत में कहा कि मैं कैसा पागल था!

एक छोटी सी मोमबत्ती के प्रकाश में, मद्धिम, धीमे, गंदे प्रकाश में बैठा रहा। और चांद का प्रकाश बाहर बरसता था, उसका मुझे कुछ पता ही न था। मैं अपनी मोमबत्ती से ही बंधा रहा। जब मोमबत्ती बुझ गई, तब मुझे पता चला कि बाहर द्वार पर अनंत आलोक भी प्रतीक्षा करता था। मोमबत्ती के बुझते ही वह भीतर आ गया।
जो आदमी भी मत की, सिद्धांत की, शास्त्र की मोमबत्तियों को जलाए बैठे रहते हैं, वे परमात्मा के अनंत प्रकाश से वंचित रह जाते हैं। मत बुझ जाए, तो सत्य प्रवेश करता है। और जो आदमी सब पर पकड़ छोड़ देता है, उस पर परमात्मा की पकड़ शुरू हो जाती है। जो आदमी सब सहारे छोड़ देता है, उसे परमात्मा का सहारा उपलब्ध हो जाता है।
बेसहारा होना परमात्मा का सहारा पा लेने का रास्ता है। सब रास्ते छोड़ देना, उसके रास्ते पर खड़े हो जाने की विधि है। सब शब्द, सब सिद्धांतों से मुक्त हो जाना, उसकी वाणी को सुनने का अवसर निर्मित करना है।
मैंने एक छोटी सी कहानी सुनी है। मैंने सुना है, कृष्ण भोजन करने बैठे हैं, रुक्मणि पंखा झलती थीं। अचानक वे थाली छोड़ कर उठ पड़े, द्वार की तरफ भागे। रुक्मणि ने कहा, क्या हुआ है? कहां भागते हैं? लेकिन शायद इतनी जल्दी थी कि वे उत्तर देने को भी रुके नहीं, द्वार तक गए पागल की तरह भागते हुए, फिर द्वार पर ठिठक कर खड़े हो गए, फिर उदास वापस लौट आए, फिर थाली पर बैठ गए। रुक्मणि ने पूछा, मुझे बहुत हैरानी में डाल दिया! एक तो पागल की भांति भागना बीच भोजन में, मैंने पूछा तो उत्तर भी नहीं दिया! फिर द्वार से वापस भी लौट आना! क्या था प्रयोजन?
कृष्ण ने कहा, बहुत जरूरत आ गई थी। मेरा एक प्यारा एक राजधानी से गुजर रहा है। राजधानी के लोग उसे पत्थर मार रहे हैं। उसके माथे से खून बह रहा है। उसका सारा शरीर लहूलुहान हो गया है। उसके कपड़े उन्होंने फाड़ डाले हैं। भीड़ उसे घेर कर पत्थरों से मारे डाल रही है। और वह खड़ा हुआ गीत गा रहा है। न वह गालियों के उत्तर दे रहा है, न पत्थरों के उत्तर दे रहा है। जरूरत पड़ गई थी कि मैं जाऊं, क्योंकि वह कुछ भी नहीं कर रहा है, वह बिल्कुल बेसहारा खड़ा है। मेरी एकदम जरूरत पड़ गई थी।
रुक्मणि ने पूछा, लेकिन आप लौट कैसे आए? द्वार से वापस आ गए हैं!
कृष्ण ने कहा कि द्वार तक गया, तब तक सब गड़बड़ हो गई। वह आदमी बेसहारा न रहा। उसने पत्थर अपने हाथ में उठा लिया। अब वह खुद ही पत्थर का उत्तर दे रहा है। अब मेरी कोई जरूरत न रही। मैं वापस लौट आया। वह आदमी खुद ही सहारा खोज लिया है। अब वह बेसहारा नहीं है।
यह कहानी सच हो कि झूठ। इस कहानी के सच और झूठ होने से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। लेकिन एक बात मैं अपने अनुभव से कहता हूं, जिस दिन आदमी बेसहारा हो जाता है, उसी दिन परमात्मा के सारे सहारे उसे उपलब्ध हो जाते हैं। लेकिन हम इतने कमजोर हैं, हम इतने डरे हुए लोग हैं कि हम कोई न कोई सहारा पकड़े रहते हैं। और जब तक हम सहारा पकड़े रहते हैं तब तक परमात्मा का सहारा उपलब्ध नहीं हो सकता है।
स्वतंत्र हुए बिना सत्य की उपलब्धि नहीं है। और सारी जंजीरों को तोड़े बिना कोई परमात्मा के द्वार पर अंगीकार नहीं होता है।
लेकिन हम कहेंगे--महापुरुषों को कैसे छोड़ दें? गांधी इतने प्यारे हैं, उनको कैसे छोड़ दें?
कौन कहता है गांधी प्यारे नहीं हैं? कौन कहता है महावीर प्यारे नहीं हैं? कौन कहता है कृष्ण प्यारे नहीं हैं? प्यारे हैं, यही तो मुश्किल है। इसी से छोड़ना मुश्किल हो जाता है। लेकिन इन प्यारों को भी छोड़ देना पड़ता है, तभी वह जो परम प्यारा है वह उपलब्ध होता है।
महात्मा, परमात्मा और मनुष्य की आत्मा के बीच में खड़े हैं। महात्मा अपनी इच्छा से नहीं खड़े हुए हैं। हमने जिनको महात्मा समझ लिया है, उनको खड़ा कर लिया है। और वे हमारे लिए दीवाल बन गए हैं। व्यक्तियों से मुक्त होने की जरूरत है, ताकि वह जो अव्यक्ति है, वह जो महाव्यक्ति है, उसके और हमारे बीच कोई बाधा न रह जाए। शब्दों और सिद्धांतों से मुक्त होने की जरूरत है, ताकि सत्य जैसा है वैसा हम देख सकें। अभी हम सत्य को वैसा ही

देखते हैं जैसा हम देखना चाहते हैं। हमारी इच्छा काम करती है, हमारी मान्यता काम करती है, हमारे चश्मे काम करते हैं। हम वही देखना चाहते हैं, वही देख लेते हैं। जो है, वह हमें दिखाई नहीं पड़ता। और जो है, वही सत्य है। कौन देख पाएगा उसे जो है? उसे वही देख पाता है, जिसका अपना देखने का कोई आग्रह नहीं, कोई मत नहीं, कोई पंथ नहीं। जिसकी आंखों पर कोई चश्मा नहीं। जो सीधा नग्न, शून्य, निर्वस्त्र--बिना सिद्धांतों के खड़ा है। उसे वही दिखाई पड़ता है, जो है। और वह जो है, मुक्तिदायी है। वह जो है, उसी का नाम जीवन है। वह जो है, उसी का नाम परमात्मा है।
यह पहला सूत्र ध्यान में रखना जरूरी हैः अपने को बांधें मत। और जहां- जहां बंधे हों, कृपा करें वहां से छूट जाएं। और यह मत पूछें कि छूटने के लिए क्या करना पड़ेगा। छूटने के लिए कुछ भी नहीं करना पड़ेगा। क्योंकि महापुरुष आपको नहीं बांधे हुए हैं कि आपको कुछ करना पड़े। आप ही उनको पकड़े हुए हैं। छोड़ दिया, और वे गए। और कुछ भी नहीं करना है। अगर कोई दूसरा आपको बांधे हो, तो कुछ करना पड़ेगा। आप ही अगर पकड़े हों, तो जान लेना पर्याप्त है--और छूटना शुरू हो जाता है।
कोई गांधी गांधीवादियों को नहीं बांधे हुए हैं। गांधी तो जिंदगी भर कोशिश करते रहे कि गांधीवाद जैसी कोई चीज खड़ी न हो जाए। लेकिन गांधीवादी बिना गांधीवाद खड़े किए कैसे रह सकते हैं! फिर बंधें किससे? वाद चाहिए, जिससे बंधा जा सके। अब वे उससे बंध गए हैं। अब उनसे पूछो, तो वे कहेंगे-- कैसे छूटें?
अगर आप पूछते हैं कैसे छूटें, तो फिर आप समझे नहीं। कोई दूसरा आपको बांधे हुए नहीं है। कृष्ण हिंदुओं को नहीं बांधे हुए हैं, और न मोहम्मद मुसलमानों को, और न महावीर जैनों को। कोई किसी को बांधे हुए नहीं है। ये तो वे सारे लोग हैं जो छुटकारा चाहते हैं कि हर आदमी छूट जाए। लेकिन हम उनकी छायाओं को पकड़े हैं और बंधे हैं। हमें कोई बांधे हुए नहीं है, हम बंधे हुए हैं। और अगर हम बंधे हुए हैं, तो बात साफ हैः हम छूटना चाहें तो एक क्षण भी छोड़ने के लिए--एक क्षण भी गंवाने की जरूरत नहीं है। आप इस भवन के भीतर बंधे हुए आए थे। इस भवन के बाहर मुक्त होकर जा सकते हैं।
मैं अभी ग्वालियर में था कुछ एक-डेढ़ वर्ष पहले। ग्वालियर के एक मित्र
ने मुझे फोन किया कि मैं अपनी बूढ़ी मां को भी आपकी सभा में लाना चाहता हूं। लेकिन मैं डरता हूं। क्योंकि उसकी उम्र कोई नब्बे वर्ष है। चालीस वर्षों से वह दिन-रात माला फेरती रहती है। सोती है, तो भी रात उसके हाथ में माला होती है। और आपकी बातें कुछ ऐसी हैं कि कहीं उसको चोट न लगे। इस उम्र में उसको लाना उचित है या नहीं?
मैंने उन मित्र को खबर की कि आप जरूर ले आएं। क्योंकि इस उम्र में अगर
न लाए, तो हो सकता है दुबारा मैं आऊं और आपकी मां से मेरा मिलना भी न हो पाए। इसलिए जरूर ले आएं। आप चाहे आएं या न आएं, मां को जरूर ले आएं!
वे मां को लेकर आए। दूसरे दिन मुझे उन्होंने खबर की कि बड़ी चमत्कार की बात हो गई है! जब मैं आया, और आप माला के खिलाफ ही बोलने लगे, तो मैं समझा कि यह तो आपको खबर करना ठीक नहीं हुआ। मैंने आपसे कहा कि मेरी मां माला फेरती है और आप माला के खिलाफ ही बोलने लगे, तो मुझे लगा कि आप मेरी मां को ही ध्यान में रख कर बोल रहे हैं। उसको नाहक चोट लगेगी, नाहक दुख होगा। मैं डरा, रास्ते में गाड़ी में मैंने पूछा भी नहीं कि तेरे मन पर क्या असर हुआ है। घर जाकर मैंने पूछा कि कैसा लगा? तो मेरी मां ने कहा, कैसा लगा? मैं माला वहीं मीटिंग में ही छोड़ आई हूं! चालीस साल का मेरा भी अनुभव कहता है कि माला से मुझे कुछ भी नहीं मिला। लेकिन मैं इतनी हिम्मत नहीं जुटा पा रही थी कि उसे छोड़ दूं। वह मुझे बात ख्याल आ गई, माला तो मुझे पकड़े हुए नहीं थी, मैं ही उसे पकड़े हुए थी। मैंने उसे छोड़ दिया, वह छूट गई!
तो आप यह मत पूछना कि कैसे हम छोड़ दें। कोई आपको पकड़े हुए नहीं है, आप
ही मुट्ठी बांधे हुए हैं। खोल दें, और वह छूट जाएगी। और छूटते ही आप पाएंगे कि चित्त हलका हो गया, निर्भार हो गया, वह तैयार हो गया है एक यात्रा के लिए।

इन चार दिनों में उस यात्रा के और सूत्रों पर हम बात करेंगे, लेकिन पहला सूत्र हैः नो क्लिंगिंग, कोई पकड़ नहीं। कोई पकड़ नहीं, गैर-पकड़, ना- पकड़! सब पकड़ छोड़ देना है। छोड़ते ही मन तैयार हो जाता है। छोड़ते ही मन पंख फैला देता है। छोड़ते ही मन सत्य की यात्रा के लिए आकांक्षा करने लगता है। क्योंकि जो मत से बंधे हैं, वे डरते हैं सत्य को जानने से। क्योंकि जरूरी नहीं कि सत्य उनके मत के पक्ष में हो। मतवादी हमेशा सत्य को जानने से डरता है। क्योंकि यह जरूरी नहीं कि सत्य उनके मत के पक्ष में हो, सत्य विपरीत भी पड़ सकता है। और मतवादी अपने मत को नहीं छोड़ना चाहता, इसलिए सत्य को जानने से ही बचता है।
मैं निरंतर कहता हूं, दो तरह के लोग हैं दुनिया में। एक वे लोग हैं, जो चाहते हैं, सत्य हमारे पीछे चले। मतवादी सत्य को अपने पीछे चलाना चाहता है। वह कहता है कि मेरा मत सही है, सत्य इसको सिद्ध करे! लेकिन मतवादी सत्यवादी नहीं है। सत्यवादी कहता है, मैं सत्य के पीछे खड़ा हो जाऊंगा। लेकिन जिसको सत्य के पीछे खड़ा होना है, उसे मत छोड़ देना पड़ेगा। नहीं
तो मत बाधा देगा, रोकेगा, अड़चन डालेगा। अगर आप हिंदू हैं, तो आप धार्मिक नहीं हो सकते हैं। अगर आप ईसाई हैं, तो आप धार्मिक नहीं हो सकते हैं। अगर धार्मिक होना है, तो ईसाई, हिंदू और मुसलमान से मुक्ति आवश्यक है। अगर जीवन के सत्य को जानना है, तो जीवन के संबंध में जो भी मत पकड़ा है, उससे मुक्ति आवश्यक है।
वह बूढ़ी औरत अदभुत थी। छोड़ गई माला। माला की कीमत चार आना तो रही ही होगी। आप जो सिद्धांत पकड़े हैं, उनकी कीमत चार आना भी नहीं है। उनको ऐसे ही छोड़ा जा सकता है हाथ से नीचे! और छोड़ कर आप महंगाई में नहीं पड़ जाएंगे, नुकसान में नहीं पड़ जाएंगे। छोड़ते ही आप पाएंगे कि जो छूट गया है, वह सत्य की तरफ जाने में बाधा था। और पहली बार आंख खुलेगी कि मैं जीवन को वैसा देख सकूं जैसा वह है।
यह पहला सूत्र है। इस संबंध में जो भी प्रश्न हों वे आप लिखित दे देंगे, और भी जो प्रश्न हों वे लिखित दे देंगे, ताकि सुबह की चर्चाओं में आपके प्रश्नों की बात हो सके। और सांझ को मैं और सूत्रों की बात करूंगा। मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उसके लिए बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

क्रांति सूत्र
दूसरा प्रवचन

भीड़ से, समाज से--दूसरों से मुक्ति

मेरे प्रिय आत्मन्!
मनुष्य का जीवन जैसा हो सकता है, मनुष्य जीवन में जो पा सकता है, मनुष्य जिसे पाने के लिए पैदा होता है--वही चूक जाता है, वही नहीं मिल पाता है। कभी कोई एक मनुष्य--कभी कोई कृष्ण, कभी कोई राम, कभी कोई बुद्ध, कभी कोई गांधी--कभी कोई एक मनुष्य के जीवन में फूल खिलते हैं और सुगंध फैलती है। लेकिन शेष सारी मनुष्यता बिना खिले मुरझा जाती है और नष्ट हो जाती है। कौन सा दुर्भाग्य है मनुष्य के ऊपर? कौन सी कठिनाई है?
करोड़ों बीज में से अगर एक बीज में अंकुर आए और करोड़ों बीज बीज ही रह कर सड़ें और समाप्त हो जाएं, यह कोई सुखद स्थिति नहीं हो सकती। लेकिन मनुष्य-जाति के पूरे इतिहास को उठा कर देखें तो अंगुलियों पर गिने जा सकें, ऐसे थोड़े से मनुष्य पैदा होते हैं। शेष सारी मनुष्यता की कोई भी कथा नहीं है! शेष सारे मनुष्य बिना किसी सौंदर्य को जाने, बिना किसी सत्य को जाने जीते हैं और नष्ट हो जाते हैं! क्या इस जीवन को हम जीवन कहें?
एक फकीर का मुझे स्मरण आता है। कभी वह सम्राट था, फिर फकीर हो गया। जो जानते हैं वे सम्राट होते हैं और फकीर हो जाते हैं। और जो नहीं जानते वे फकीर भी पैदा हों तो सम्राट होने की कोशिश में ही जीते हैं और मर जाते हैं। वह पैदा तो सम्राट हुआ था, लेकिन फिर फकीर हो गया। और जिस राजधानी में पैदा हुआ था, उसी राजधानी के बाहर एक झोपड़े में रहने लगा। लेकिन उसके झोपड़े पर अक्सर उपद्रव होने लगा। जो भी आता, उसी से झगड़ा हो जाता! रास्ते पर था झोपड़ा, गांव से कोई चार मील बाहर था, चौराहे पर था। राहगीर उससे पूछते कि बस्ती कहां है? रास्ता कहां है? वह फकीर कहता, बस्ती ही जाना चाहते हो? तो बाईं तरफ भूल कर मत जाना, दाईं तरफ के रास्ते से जाना, तो बस्ती पहुंच जाओगे।
लोग उसकी बात मान कर दाईं तरफ जाते, और दो-चार मील चल कर मरघट में पहुंच जाते! वहां कहां बस्ती थी, वहां तो सिर्फ कब्रें थीं! वे क्रोध में वापस आते और कहते कि पागल हो तुम? हमने पूछा था बस्ती का रास्ता, और तुमने मरघट का बताया! तब वह फकीर हंसने लगता और कहता, फिर हमारी परिभाषा फर्क-फर्क मालूम पड़ती है। मैं तो उसी को बस्ती कहता हूं। क्योंकि तुम जिसे बस्ती कहते हो, उसमें तो कोई भी बसा हुआ नहीं है। कोई आज उजड़ जाएगा, कोई कल। वहां तो मौत रोज आती है और किसी को उठा ले जाती है। वह, जिसे तुम बस्ती कहते हो, वह तो मरघट है। वहां मरने वाले लोग प्रतीक्षा कर रहे हैं मृत्यु की। मैं इसी को बस्ती कहता हूं, जिसे तुम मरघट कहते हो; क्योंकि वहां जो एक बार बस गया, वह बस गया। फिर उसकी मौत नहीं होती, फिर उजड़ना नहीं पड़ता। तो बस्ती मैं उसे कहता हूं, जहां बस गए लोग फिर उखड़ते नहीं, वहां से हटते नहीं। लेकिन पागल रहा होगा वह फकीर। लेकिन क्या दुनिया के सारे समझदार लोग पागल रहे हैं? दुनिया के सारे समझदार एक बात कहते हैं कि जिसे हम जीवन समझते हैं, वह जीवन नहीं है। और चूंकि हम गलत जीवन को जीवन समझ लेते हैं, इसलिए जिसे हम मृत्यु समझते हैं, वह भी मृत्यु नहीं है। हमारा सब कुछ ही उलटा है। हमारा सब कुछ ही अज्ञान से भरा हुआ और अंधकार से पूर्ण है। फिर जीवन क्या है? और उस जीवन को जानने और समझने का द्वार और मार्ग क्या है? बुद्ध के पास एक बूढ़ा भिक्षु था। बुद्ध ने एक दिन उस बूढ़े भिक्षु को पूछा कि मित्र, तेरी उम्र क्या है? उस भिक्षु ने कहा, आप भलीभांति जानते हैं, फिर भी पूछते हैं? मेरी उम्र पांच वर्ष है।
बुद्ध बहुत हैरान हुए और कहने लगे, कैसी मजाक करते हैं? पांच वर्ष! पचहत्तर वर्ष से कम तो आपकी उम्र न होगी।
वह बूढ़ा कहने लगा, हां, सत्तर वर्ष भी जीया हूं, लेकिन वे जीने के वर्ष नहीं कहे जा सकते। उनकी गिनती उम्र में कैसे करूं? पांच वर्षों से जीवन को जाना है, इसलिए पांच ही वर्ष उम्र की गिनती करता हूं। वे सत्तर वर्ष सोते बीत गए--नींद में, बेहोशी में, मूर्च्छा में। उनकी गिनती कैसे करूं? नहीं

जानता था जीवन को, तो फिर उनको भी गिनती कर लेता था। जब से जीवन को जाना, तब से उनकी गिनती करनी बहुत मुश्किल हो गई है।
बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को कहा, भिक्षुओ, आज से तुम भी अपनी गिनती जीवन की इसी भांति करना।
यही मैं आपसे भी इन दिनों में कहना चाहता हूं कि जिसे हम अब तक जीवन जान रहे हैं, वह जीवन नहीं, एक निद्रा है, एक मूर्च्छा है; एक दुख की लंबी कथा है; एक अर्थहीन खालीपन, एक मीनिंगलेस एंप्टीनेस है। जहां कुछ भी नहीं है हमारे हाथों में। जहां न हमने कुछ जाना है और न कुछ जीया है।
लेकिन फिर जीवन कहां है जिसकी हम बात करें? उस जीवन को पाने के सूत्र क्या हैं?
एक सूत्र पर सुबह मैंने बात की है, दूसरे सूत्र पर अभी बात करूंगा।
दूसरे सूत्र को समझने के लिए एक बात समझ लेनी जरूरी है। मनुष्य का जीवन भीतर से बाहर की तरफ आता है, बाहर से भीतर की तरफ नहीं। जीवन भीतर से बाहर की तरफ आता है। एक बीज से अंकुर निकलता है, वह भीतर से आता है। फिर वृक्ष बड़ा होता है, फिर पत्ते और फूल और फल आते हैं। उस छोटे से बीज से एक बड़ा वृक्ष निकलता है, जिसके नीचे हजारों लोग विश्राम कर सकें, छाया ले सकें। एक छोटे से बीज से बहुत बड़ा वृक्ष निकलता है, जिसको तौलने बैठें तो कल्पना के बाहर है। इतने छोटे बीज में इतना बड़ा वृक्ष कैसे छिपा हो सकता है? लेकिन वृक्ष बाहर से नहीं आता है--यह अंधा भी कह सकेगा। वृक्ष भीतर से आता है, उस छोटे से बीज से ही आता है।
जीवन भी छोटे ही बीज से भीतर से बाहर की तरफ फैलता है। और हम सारे लोग जीवन को बाहर ही खोजते हैं। जीवन आता है भीतर से, फैलता है बाहर की तरफ। बाहर जीवन का विस्तार है, जीवन का केंद्र नहीं। जीवन की मूल ऊर्जा, जीवन का सोर्स, जीवन का स्रोत भीतर है, जीवन की शाखाएं बाहर हैं। और हम सब जीवन को खोजते हैं बाहर, इसलिए जीवन से वंचित रह जाते हैं, जीवन को नहीं जान पाते हैं! पत्तों को जान लेते हैं, पत्तों को पहचान लेते हैं, लेकिन पत्ते? पत्ते जड़ें नहीं हैं।
मैंने सुना है, माओत्से तुंग ने अपने बचपन की एक छोटी सी घटना लिखी है। लिखा है कि मैं छोटा था तो मेरी मां का एक बगीचा था। उस बगीचे में ऐसे बड़े फूल खिलते थे कि दूर-दूर से लोग उन्हें देखने आते थे। फिर एक बार मेरी बूढ़ी मां बीमार पड़ी। वह बहुत चिंतित थी--बीमारी के लिए नहीं, अपने बगीचे के लिए--कि बगीचा कुम्हला न जाए। वह इतनी बीमार थी कि बिस्तर से उठ कर बाहर आ भी नहीं सकती थी।
तो उसके बेटे ने कहा, घबड़ाओ मत, मैं फिक्र कर लूंगा। और उसके बेटे ने पंद्रह दिन तक बहुत फिक्र की। एक-एक पत्ते की धूल झाड़ी, एक-एक पत्ते को पोंछा और चूमा। एक-एक पत्ते को सम्हाला, एक-एक फूल की फिक्र की। लेकिन न मालूम क्या, इतनी फिक्र, इतनी चिंता, बगीचा सूखता गया!
पंद्रह दिन बाद उसकी बूढ़ी मां बाहर आई तो उसका बेटा रो रहा था, और बूढ़ी मां ने देखा तो उसकी बगिया तो उजड़ गई थी! वृक्ष बेहोश होकर गिर पड़े थे, पत्ते सूख गए थे, फूल कुम्हला गए थे, कलियां कलियां ही रह गई थीं, फूल नहीं बनी थीं। उसकी मां कहने लगी कि तू क्या करता था पंद्रह दिन से सुबह से रात तक? सोता भी नहीं था! यह क्या हुआ?
उसके बेटे ने कहा, मैंने बहुत फिक्र की। मैंने एक-एक पत्ते की धूल झाड़ी। मैंने एक-एक फूल पर पानी छिड़का। मैंने एक-एक पौधे को गले लगा कर प्रेम किया। लेकिन न मालूम कैसे पागल पौधे हैं, सब कुम्हला गए, सब सूख गए। उसकी मां की आंखों में बगिया को देख कर आंसू थे, लेकिन बेटे की हालत देख कर वह हंसने लगी और उसने कहा, पागल, फूलों के प्राण फूलों में नहीं होते, उन जड़ों में होते हैं जो दिखाई नहीं पड़तीं और जमीन के नीचे छिपी हैं। पानी फूलों को नहीं देना पड़ता, जड़ों को देना पड़ता है। फिक्र पत्तों की नहीं करनी पड़ती, जड़ों की करनी पड़ती है। पत्तों की लाख फिक्र, तो भी जड़ें कुम्हला जाएंगी और पत्ते भी सूख जाएंगे। और जड़ों की थोड़ी सी फिक्र और पत्तों की कोई भी फिक्र नहीं, तो भी पत्ते फलते रहेंगे, खिलते रहेंगे, फूल फैलते रहेंगे, सुगंध उड़ती रहेगी। जो छिपी है जड़!

लेकिन उसके बेटे ने पूछा, जड़ें कहां हैं? वे दिखाई तो नहीं पड़ती हैं!
और अधिक आदमी भी यही पूछते हैं--जीवन कहां है? वह दिखाई नहीं पड़ता, बहुत छिपा है--अपने ही भीतर, अपनी ही जड़ों में। बाहर जहां दिखाई पड़ता है सब कुछ, वहां पत्ते हैं, शाखाएं हैं। अदृश्य, भीतर, जहां दिखाई नहीं पड़ता और घोर अंधकार है, वहां जड़ें हैं जीवन की।
दूसरा सूत्र समझ लेना जरूरी है और वह यह कि जीवन बाहर नहीं है, भीतर है। विस्तार बाहर है, प्राण भीतर है। फूल बाहर खिलते हैं, जड़ें भीतर हैं। और जड़ों के संबंध में हम सब भूल गए हैं। उस माओ पर हम हंसेंगे कि नादान था वह लड़का बहुत, लेकिन हम अपने पर नहीं हंसते हैं कि हम जीवन के बगीचे में उतने ही नादान हैं।
और अगर आदमी के चेहरे से मुस्कुराहट चली गई है, और आदमी की आंखों से शांति खो गई है, और आदमी के हृदय में फूल नहीं लगते, और आदमी की जिंदगी में संगीत नहीं बजता, और आदमी की जिंदगी एक बे-रौनक उदासी हो गई है, तो फिर हम पूछते हैं कि हम कितना तो सम्हालते हैं--कितने अच्छे मकान बनाते हैं, कितने अच्छे रास्ते बनाते हैं, कितने अच्छे कपड़े पैदा करते हैं, सब कुछ, कितनी अच्छी शिक्षा देते हैं, कितने विद्यालय निर्मित करते हैं, कितना विज्ञान विस्तार करता है--सब तो हम करते हैं, लेकिन आदमी कुम्हलाता क्यों चला जाता है?
वह हम वही पूछते हैं जो उस लड़के ने पूछा था कि मैंने एक-एक पत्ते को सम्हाला, लेकिन फूल क्यों कुम्हला गए? पौधे क्यों कुम्हला गए?
आदमी कुम्हला गया है, क्योंकि हम बाहर सम्हाल रहे हैं। और ध्यान रहे--
और यही बात बहुत महत्वपूर्ण है--कि बाहर जिनको हम भौतिकवादी कहते हैं वे ही केवल बाहर नहीं देखते, जिनको हम अध्यात्मवादी कहते हैं, दुर्भाग्य है, वे भी बाहर ही देखते हैं और बाहर ही सम्हालते हैं!
भौतिकवादी तो बाहर सम्हालेगा, क्योंकि भौतिकवादी मानता है भीतर जैसी कोई चीज ही नहीं है। भीतर है ही नहीं। भौतिकवादी कहता है, भीतर कोरा शब्द है। भीतर कुछ भी नहीं है। हालांकि यह बड़ी अजीब बात मालूम पड़ती है। क्योंकि जिसका भी बाहर होता है, उसका भीतर अनिवार्य रूप से होता है। यह असंभव है कि बाहर ही बाहर हो और भीतर न हो। अगर भीतर न हो, तो बाहर नहीं हो सकता है। अगर एक मकान की बाहर की दीवाल है, तो भीतर भी होगा। अगर एक पत्थर की बाहर की रूप-रेखा है, तो भीतर भी कुछ होगा। बाहर की जो रूप-रेखा है, वह भीतर को ही घेरने वाली रूप-रेखा होती है। बाहर का अर्थ है, भीतर को घेरने वाला। और अगर भीतर न हो, तो बाहर कुछ भी नहीं हो सकता।
लेकिन भौतिकवादी कहता है कि भीतर कुछ नहीं, इसलिए भौतिकवादी को क्षमा किया जा सकता है। लेकिन अध्यात्मवादी भी सारी चेष्टा बाहर करता है। वह भी कहता है, ब्रह्मचर्य साधो! वह भी कहता है, अहिंसा साधो! वह भी कहता है, सत्य साधो! वह भी गुणों को साधने की कोशिश करता है!
अहिंसा, ब्रह्मचर्य, प्रेम, करुणा, दया--सब फूल हैं, जड़ उनमें से कोई भी नहीं है।
जड़ सम्हल जाए, तो अहिंसा अपने आप पैदा हो जाती है। और अगर जड़ न सम्हले,
तो अहिंसा को जिंदगी भर सम्हालो, अहिंसा पैदा नहीं होती। बल्कि अहिंसा के पीछे निरंतर हिंसा खड़ी रहती है। और वह हिंसक बेहतर, जो हिंसक है; वह अहिंसक बहुत खतरनाक, जो भीतर हिंसक है।
जिन मुल्कों ने अध्यात्म की बहुत बात की है, उन्होंने बाहर से एक थोथा अध्यात्म पैदा कर लिया है। बाहर का जो थोथा अध्यात्म है, वह गुणों पर जोर देता है, अंतस पर नहीं। वह कहता है--सेक्स छोड़ो, ब्रह्मचर्य साधो! वह कहता है--झूठ छोड़ो, सत्य को साधो! वह कहता है--कांटे हटा लो, फूल-फूल पैदा करो! लेकिन वह इसकी बिल्कुल फिक्र नहीं करता कि फूल कहां से पैदा होते हैं, वे जड़ें कहां हैं? और अगर वे जड़ें न सम्हाली जाएं, तो फूल पैदा होने वाले नहीं हैं। हां, कोई चाहे तो बाजार से कागज के फूल लाकर अपने ऊपर चिपका सकता है। और दुनिया में अध्यात्म के नाम से कागज के फूल चिपकाए हुए लोगों की भीड़ खड़ी हो गई है। और इन कागज के अध्यात्मवादी लोगों के कारण भौतिकवाद को दुनिया में नहीं हराया जा पा रहा है। क्योंकि भौतिकवाद कहता है, यही है

तुम्हारा अध्यात्म? ये कागज के फूल? और इन कागज के फूलों को देख कर भौतिकवादी को लगता है--नहीं है कुछ भीतर, सब ऊपर की बातें हैं। ये फूल भी सब ऊपर से ले आए गए हैं।
अध्यात्म के नाम से बाहर का आरोपण चल रहा है, कल्टीवेशन और इंपोजीशन
चल रहा है। आदमी, भीतर क्या है सोया हुआ, उसे जगाने की चिंता में नहीं, बाहर से अच्छे वस्त्र पहन लेने की चिंता में है! इससे एक अदभुत धोखा पैदा हो गया है। दुनिया में भौतिकवादी हैं और दुनिया में झूठे अध्यात्मवादी हैं। दुनिया में सच्चा आदमी खोजना मुश्किल होता चला जाता है।
हां, कभी कोई एकाध सच्चा आदमी पैदा होता है। लेकिन उस आदमी को भी हम नहीं समझ पाते, क्योंकि उसको भी हम बाहर से देखते हैं कि वह क्या करता है? वह कैसे चलता है? क्या पहनता है? क्या खाता है? और इसी आधार पर हम निर्णय लेते हैं कि वह भीतर क्या होगा!
नहीं, फूल के आधार पर जड़ों का पता नहीं चलता है। फूल के रंग देख कर जड़ों का कुछ पता नहीं चलता है। पत्तों से जड़ों का कुछ पता नहीं चलता है। जड़ें कुछ बात ही और है। वह आयाम दूसरा है; वह डायमेंशन दूसरा है। लेकिन यह ऊपर से सम्हालने की, वस्त्रों को सम्हालने की लंबी कथा चल रही है। और हमने एक झूठा आदमी पैदा कर लिया है। इस झूठे आदमी का भी कोई जीवन नहीं होता है। इस झूठे आदमी को हम थोड़ा समझ लें; क्योंकि यह झूठा आदमी कहीं और नहीं है, हम सब झूठे आदमी हैं।
मैंने सुना है, एक किसान ने एक खेत में एक झूठा आदमी बना कर खड़ा कर दिया था। किसान खेतों में आदमी झूठा बना कर खड़ा कर देते हैं। कुर्ता पहना दिया था, हंडी लगा दी थी, मुंह बना दिया था। जंगली जानवर उस आदमी को देख कर डर जाते थे, भाग जाते थे। पक्षी उस खेत में आने से डरते थे। एक दार्शनिक उस झूठे आदमी के पास से निकलता था। और उस दार्शनिक ने उस झूठे आदमी को पूछा कि दोस्त, सदा यहीं खड़े रहते हो? धूप आती है, वर्षा आती है, सर्दियां आती हैं, रात आती है, अंधेरा हो जाता है--तुम यहीं खड़े रहते हो? ऊबते नहीं? घबराते नहीं? परेशान नहीं होते?
वह झूठा आदमी बहुत हंसने लगा। उसने कहा, परेशान! परेशान कभी भी नहीं होता, दूसरों को डराने में इतना मजा आता है कि सब वर्षा भी गुजार देता हूं, धूप भी गुजार देता हूं, रात भी गुजार देता हूं। दूसरों को डराने में इतना मजा आता है! दूसरों को प्रभावित देख कर, भयभीत देख कर बहुत मजा आता है। दूसरों की आंखों में सच्चा दिखाई पड़ता हूं--बस बात खत्म हो जाती है। पक्षी डरते हैं कि मैं सच्चा आदमी हूं। जंगली जानवर भय खाते हैं कि मैं सच्चा आदमी हूं। उनकी आंखों में देख कर कि मैं सच्चा हूं, बहुत आनंद आता है।
उस दार्शनिक ने कहा कि बड़ी आश्चर्य की बात है! लेकिन तुम जो कहते हो, वही हालत मेरी भी है। मैं भी दूसरों की आंखों में देखता हूं कि मैं क्या हूं और उसी से आनंद लेता चला जाता हूं!
वह झूठा आदमी हंसने लगा और उसने कहा कि तब फिर मैं समझ गया, तुम भी एक झूठे आदमी हो।
पता नहीं यह बात कहीं हुई या नहीं हुई। लेकिन झूठे आदमी की एक पहचान हैः वह हमेशा दूसरों की आंखों में देखता है कि कैसा दिखाई पड़ता है। उसे इससे मतलब नहीं कि वह क्या है। उसकी सारी चिंता, उसकी सारी चेष्टा एक है कि वह दूसरों को कैसा दिखाई पड़ता है! वे जो चारों तरफ देखने वाले लोग हैं, वे क्या कहते हैं!
यह जो बाहर का थोथा अध्यात्म है, यह लोगों की चिंता से पैदा हुआ है-- लोग क्या कहते हैं! और जो आदमी यह सोचता है कि लोग क्या कहते हैं--वे क्या कहते हैं--वह आदमी कभी भी जीवन के अनुभव को उपलब्ध नहीं हो सकता। जो आदमी यह फिक्र करता है कि भीड़ क्या कहती है, और जो भीड़ के हिसाब से अपने व्यक्तित्व को निर्मित करता है, वह आदमी भीतर जो सोए हुए प्राण हैं, उसको कभी नहीं जगा पाएगा। वह बाहर से ही वस्त्र ओढ़ लेगा, और लोगों की आंखों में भला दिखाई पड़ने लगेगा, और बात समाप्त हो जाएगी।
हम वैसे दिखाई पड़ रहे हैं, जैसे हम नहीं हैं!
हम वैसे दिखाई पड़ रहे हैं, जैसे हम कभी भी नहीं थे!

हम वैसे दिखाई पड़ रहे हैं, जैसा दिखाई पड़ना सुखद मालूम पड़ता है! लेकिन वैसे हम नहीं हैं।
मैंने सुना है कि लंदन के एक फोटोग्राफर ने अपनी दुकान के सामने एक बड़ी तख्ती लगा रखी थी। और उस तख्ती पर लिख रखा था कि तीन तरह के फोटो हम यहां उतारते हैं। पहली तरह के फोटो का दाम सिर्फ पांच रुपया है। वह फोटो ऐसा होगा, जैसे आप हैं। दूसरे फोटो का दाम दस रुपया है। वह ऐसा होगा, जैसे आप दिखाई पड़ते हैं। तीसरे का दाम पंद्रह रुपया है। वह ऐसा होगा, जैसे आप दिखाई पड़ना चाहते हैं।
एक गांव का आदमी आया था फोटो निकलवाने, वह बड़ी मुश्किल में पड़ गया। वह पूछने लगा, तीन-तीन तरह के फोटो एक आदमी के कैसे हो सकते हैं? फोटो तो एक ही तरह का होता है! एक ही आदमी के तीन तरह के फोटो कैसे हो सकते हैं? और वह ग्रामीण पूछने लगा कि जब पांच रुपये में फोटो उतर सकता है, तो पंद्रह रुपये में कौन उतरवाता होगा!
वह फोटोग्राफर बोला कि नासमझ, नादान, तू पहला आदमी आया है, जो पहली तरह
का फोटो उतरवाने का विचार कर रहा है। अब तक पहली तरह का फोटो उतरवाने वाला कोई आदमी नहीं आया। कोई दूसरी तरह का उतरवाता है, पैसे की कमी होती है तो। और नहीं तो तीसरी तरह के ही लोग उतरवाते हैं। पहली तरह का तो कोई उतरवाता ही नहीं।
कोई आदमी नहीं चाहता कि दिखाई पड़े वैसा, जैसा वह है। दूसरों को भी दिखाई न पड़े, और खुद को भी दिखाई न पड़े, जैसा वह है।
तो फिर भीतर यात्रा नहीं हो सकती है। क्योंकि भीतर तो सत्य की सीढ़ियां चढ़ कर ही यात्रा होती है, असत्य की सीढ़ियां चढ़ कर नहीं। और ध्यान रहे, अगर बाहर यात्रा करनी हो, तो असत्य की सीढ़ियां चढ़े बिना बाहर कोई यात्रा नहीं होती। अगर दिल्ली पहुंचना हो, तो असत्य की सीढ़ियां चढ़े बिना कोई यात्रा नहीं हो सकती। और भीतर जाना हो, तो सत्य की सीढ़ियां चढ़े बिना कोई यात्रा नहीं हो सकती। अगर बहुत धन के अंबार लगाने हों, तो असत्य की यात्रा के सिवाय कोई रास्ता नहीं है। अगर बहुत यश पाना हो, प्रतिष्ठा पानी हो, नेतृत्व पाना हो, तो असत्य के सिवाय कोई यात्रा नहीं है। बाहर की सारी यात्रा की सीढ़ियां असत्य की ईंटों से निर्मित हैं।
भीतर की यात्रा सत्य की सीढ़ियों से करनी पड़ती है। और पहला सत्य बहुत कठिन पड़ता है--इस बात को जानना कि मैं सच में क्या हूं? हम तो इसे दबाते हैं, जो मैं हूं। हम तो इसे भुलाते हैं। हम शरीर को तो बहुत देखते हैं आईने के सामने रख-रख कर, लेकिन वह जो भीतर है, उसके सामने कभी आईना नहीं रखते। और अगर कोई आईना ले आए, तो हम बहुत नाराज हो जाते हैं। आईना भी तोड़ देंगे, उस आदमी का सिर भी तोड़ देंगे। आईना दिखलाते हो?
कोई आदमी भीतर के आदमी को देखने के लिए तैयार नहीं है। और इसलिए दुनिया में जिन लोगों ने भी भीतर के असली आदमी को दिखाने की कोशिश की है, उनके साथ हमने वह व्यवहार किया है, जो दुश्मन के साथ करना चाहिए। चाहे हम जीसस को सूली पर लटका दें और चाहे सुकरात को जहर पिला दें, जो भी आदमी हमारी असलियत को दिखाने की कोशिश करेगा, हम बहुत नाराज हो जाते हैं; क्योंकि वह हमारी नग्नता को खोल कर हमारे सामने रखता है। और हम--हम धीरे- धीरे भूल ही गए हैं कि वस्त्रों के भीतर हम नंगे भी हैं! हम धीरे-धीरे समझने लगे हैं कि हम वस्त्र ही हैं। भीतर एक नंगा आदमी भी है, उसे हम धीरे- धीरे भूल गए हैं--बिल्कुल भूल गए हैं! बिल्कुल भूल गए हैं, उसकी हमें कोई याद नहीं रही है। वही हमारी असलियत है। उस असलियत पर पैर रखे बिना, और भी गहरी असलियतें हैं भीतर, उन तक नहीं पहुंचा जा सकता।
इसलिए दूसरा सूत्र हैः मैं जैसा हूं, उसका साक्षात्कार।
लेकिन वह हम नहीं करते हैं। हम तो दबा-दबा कर अपनी एक झूठी तस्वीर, एक फाल्स इमेज खड़ी करने की कोशिश करते हैं!
भीतर हिंसा भरी है, और आदमी पानी छान कर पीएगा और कहेगा कि मैं अहिंसक हूं! भीतर हिंसा की आग जल रही है, भीतर सारी दुनिया को मिटा देने का पागलपन है, भीतर विध्वंस है, भीतर वायलेंस है, और एक आदमी रात खाना नहीं खाएगा और सोचेगा कि मैं अहिंसक हूं!

हम सस्ती तरकीब निकालते हैं कुछ हो जाने की। इतना सस्ता मामला नहीं है। आप क्या खाते हैं, क्या पीते हैं, इससे आप अहिंसक नहीं होते। हां, आप अहिंसक हो जाएंगे तो आपका खाना-पीना जरूर बदल जाएगा। लेकिन आपके खाने- पीने के बदलने से आप अहिंसक नहीं हो सकते हैं। यह बात जरूर सच है कि भीतर प्रेम आएगा तो आपका बाहर का व्यक्तित्व बदल जाएगा। लेकिन बाहर के व्यक्तित्व बदल लेने से भीतर प्रेम नहीं आता है। उलटा सच नहीं है। अगर प्रेम आ जाए तो मैं किसी को गले से लगा सकता हूं; लेकिन गले से लगा लेने से यह मत सोचना कि प्रेम आ गया। गले से हम लगा सकते हैं, और कवायद हो जाएगी, प्रेम-व्रेम नहीं आएगा।
लेकिन लोग सोचते हैं, गले से लगाने से प्रेम आ जाता है, बात खतम हो गई।
तो गले से लगाने की तरकीब सीख लो, बात खत्म हो जाती है। तो एक आदमी गले से लगाने की तरकीब सीख लेता है और सोचता है कि प्रेम आ गया।
गले लगाने से प्रेम के आने का क्या संबंध हो सकता है? कोई भी संबंध नहीं हो सकता।
श्रद्धा भीतर आ जाए, आदर भीतर आ जाए, तो आदमी झुक जाता है। लेकिन झुकने
से श्रद्धा नहीं आ जाती--कि आप झुक गए तो श्रद्धा आ गई। आपका शरीर झुक जाएगा, आप पीछे अकड़े हुए खड़े रहोगे। देख लेना ख्याल से--जब मंदिर में जाकर झुको तब देख लेना कि आप खड़े हो, सिर्फ शरीर झुक रहा है। आप खड़े ही हुए हो। आप खड़े होकर चारों तरफ देख रहे हो कि मंदिर में लोग देख रहे हैं कि नहीं कि मैं आया हूं! कोई मुहल्ले-पड़ोस का देखता है कि नहीं देखता! आप खड़े होकर यह देखते रहोगे, शरीर झुकेगा। शरीर के झुकने से क्या अर्थ है?
लेकिन हम जो हैं, उसे छिपाने को हमने सस्ती तरकीबें खोज ली हैं। एक आदमी पाप करता है--और कौन आदमी पाप नहीं करता--और फिर गंगा जाकर स्नान कर आता है! और निश्चिंत हो जाता है। गंगा-स्नान से पाप मिट गए?
रामकृष्ण के पास एक आदमी गया और कहा, परमहंस, गंगा-स्नान को जा रहा हूं, आशीर्वाद दे दें!
रामकृष्ण ने कहा, किसलिए कष्ट कर रहा है? किसलिए गंगा को तकलीफ देने
जा रहा है? मामला क्या है? गंगा भी घबड़ा गई होगी। आखिर कितना जमाना हो गया पापियों के पाप धोते-धोते।
वह आदमी कहने लगा कि हां, उसी के लिए जा रहा हूं कि पापों से छुटकारा
हो जाए। आशीर्वाद दे दें।
रामकृष्ण ने कहा, तुझे पता है, गंगा के किनारे जो बड़े-बड़े झाड़ होते हैं, वे देखे, वे किसलिए हैं?
उस आदमी ने कहा, किसलिए हैं? मुझे पता नहीं।
रामकृष्ण ने कहा, पागल, तू गंगा में डूबेगा, पाप बाहर निकल कर झाड़ों पर बैठ जाएंगे। फिर निकलेगा पानी से कि नहीं? वे झाड़ों पर बैठे रास्ता देखेंगे कि बेटे निकलो और हम तुम पर फिर सवार हो जाएं! वे झाड़ इसीलिए हैं गंगा के किनारे। कब तक पानी में डूबे रहोगे? निकलोगे तो! बेकार मेहनत मत करो, रामकृष्ण ने उससे कहा, तुमको भी तकलीफ होगी, गंगा को भी, पापों को भी, वृक्षों को भी। इस सस्ती तरकीब से कुछ हल नहीं है।
लेकिन हम सब सस्ती तरकीबें खोज रहे हैं। गंगा-स्नान कर लेंगे। और गंगा-स्नान जैसे ही मामले हैं हमारे सारे। एक ऊपर से व्यक्तित्व खड़ा करने की कोशिश करते हैं--उसे झुठलाने के लिए, जो हम भीतर हैं।
टाल्सटाय एक दिन सुबह-सुबह चर्च गया। जल्दी थी, अंधेरा था अभी, रास्ते
पर कोहरा पड़ रहा था, पांच ही बजे होंगे। जल्दी गया था कि अकेले में कुछ प्रार्थना कर लूंगा। जाकर देखा कि उसके पहले भी कोई आया हुआ है। अंधेरे में, चर्च के द्वार पर हाथ जोड़े हुए एक आदमी खड़ा है। और वह आदमी कह रहा है कि हे परमात्मा, मुझसे ज्यादा पापी कोई भी नहीं है। मैंने बड़े पाप किए हैं; मैंने बड़ी बुराइयां की हैं; मैंने बड़े अपराध किए हैं; मैं बिल्कुल हत्यारा हूं। मुझे क्षमा करना!
टाल्सटाय ने देखा कि कौन आदमी है जो अपने मुंह से कहता है कि मैंने पाप किए, मैं हत्यारा हूं! कोई आदमी नहीं कहता। बल्कि हत्यारे से कहो कि हत्यारे हो, तो तलवार लेकर खड़ा हो जाएगा, कहेगाः किसने कहा? हत्या करने को

राजी हो जाएगा, लेकिन यह मानने को राजी नहीं होगा कि मैं हत्यारा हूं। यह कौन आदमी आ गया? टाल्सटाय धीरे-धीरे सरक कर पास पहुंच गया। आवाज पहचानी हुई मालूम पड़ी। यह तो नगर का सबसे बड़ा धनपति था! उसकी सारी बातें टाल्सटाय खड़े होकर सुनता रहा।
जब वह आदमी लौटा, टाल्सटाय को देख कर उस आदमी ने कहा, क्या तुमने मेरी बातें सुनीं?
टाल्सटाय ने कहा, मैं धन्य हो गया तुम्हारी बातें सुन कर। तुम इतने पवित्र आदमी हो कि अपने सब पाप को तुमने इस तरह खोल कर रख दिया!
उसने कहा, ध्यान रहे, यह बात किसी से कहना मत! यह मेरे और परमात्मा के बीच थी। मुझे पता भी नहीं था कि तुम यहां खड़े हुए हो। अगर बाजार में यह बात पहुंची, तो मानहानि का मुकदमा चलाऊंगा।
टाल्सटाय ने कहा, अरे, अभी तो तुम कहते थे...
उसने कहा, वह सब दूसरी बात है। वह तुमसे मैंने नहीं कहा और दुनिया से कहने के लिए नहीं है। वह अपने और परमात्मा के बीच की बात है!
चूंकि परमात्मा कहीं भी नहीं है, इसलिए उसके सामने हम नंगे खड़े हो सकते हैं। लेकिन जो आदमी जगत के सामने सच्चा होने को राजी नहीं है, उसके सामने परमात्मा कभी सच्चा नहीं हो सकता है। हम अपने ही सामने सच्चे होने को राजी नहीं हैं!
लेकिन यह डर क्या है इतना? यह चारों तरफ के लोगों का इतना भय क्या है? चारों तरफ की लोगों की आंखें एक-एक आदमी को भयभीत किए हैं। हम सब मिल कर एक-एक आदमी को भयभीत किए हुए हैं। और वह आदमी इतना भयभीत क्यों है? वह किस बात की चिंता में है?
वह बाहर से फूल सजा लेने की चिंता में है। बस लोगों की आंखों में दिखाई पड़ने लगे कि मैं अच्छा आदमी हूं, बात समाप्त हो गई। लेकिन लोगों के दिखाई पड़ने से मेरे जीवन का सत्य और मेरे जीवन का संगीत प्रकट नहीं होगा। और न लोगों के दिखाई पड़ने से मैं जीवन की मूल धारा से संबंधित हो जाऊंगा। और न लोगों के दिखाई पड़ने से मेरे जीवन की जड़ों तक मेरी पहुंच हो जाएगी। बल्कि, जितना मैं लोगों की फिक्र करूंगा, उतना ही मैं शाखाओं और पत्तों की फिक्र में पड़ जाऊंगा; क्योंकि लोगों तक सिर्फ पत्ते पहुंचते हैं, जड़ें मेरे भीतर हैं। वे जो रूट्स हैं, वे मेरे भीतर हैं। उनसे लोगों का कोई भी संबंध नहीं है। वहां मैं अकेला हूं। टोटली अलोन! वहां कोई कभी नहीं पहुंचता। वहां मैं हूं। वहां मेरे अतिरिक्त कोई भी नहीं है। वहां मुझे फिक्र करनी है।
अगर जीवन को मैं जानना चाहता हूं; और चाहता हूं कि जीवन बदल जाए, रूपांतरित हो जाए; और अगर चाहता हूं कि जीवन की परिपूर्ण शक्ति प्रकट हो जाए; और अगर चाहता हूं कि जीवन के मंदिर में प्रवेश हो जाए; मैं पहुंच सकूं उस लोक तक, जहां सत्य का आवास है--तो फिर मुझे लोगों की फिक्र छोड़ देनी पड़ेगी; वह जो क्राउड, वह जो भीड़ घेरे हुए है। जो आदमी भीड़ की बहुत चिंता करता है, वह आदमी कभी भी जीवन की दिशा में गतिमान नहीं हो पाता। क्योंकि भीड़ की चिंता बाहर की चिंता है।
लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि भीड़ की सारी जीवन-व्यवस्था को तोड़ कर कोई चल पड़े। इसका यह मतलब नहीं है। इसका कुल मतलब यह है कि आंखें भीड़ पर न रह जाएं, आंखें अपने पर हों। इसका कुल मतलब यह है कि दूसरे की आंख में मैं न झांकूं कि मेरी तस्वीर क्या है। मैं अपने ही भीतर झांकूं कि मेरी तस्वीर क्या है! अगर मेरी सच्ची तस्वीर का मुझे पता लगाना है, तो मुझे मेरी ही आंखों के भीतर उतरना पड़ेगा। दूसरों की आंखों में मेरा एपियरेंस है, मेरी असली तस्वीर नहीं है वहां। और उसी तस्वीर को देख कर मैं खुश हो लूंगा, उसी तस्वीर को प्रसन्न हो लूंगा। वह तस्वीर गिर जाएगी, तो दुखी हो जाऊंगा। अगर चार आदमी बुरा कहने लगेंगे, तो दुखी हो जाऊंगा। चार आदमी अच्छा कहने लगेंगे, तो सुखी हो जाऊंगा। बस इतना ही मेरा होना है?
तो मैं हवा के झोंकों पर जी रहा हूं। हवा पूरब उड़ने लगेगी, तो मुझे पूरब उड़ना पड़ेगा; हवा पश्चिम उड़ेगी, तो मुझे पश्चिम उड़ना पड़ेगा। लेकिन मैं खुद कुछ भी नहीं हूं। मेरा कोई आथेंटिक एक्झिस्टेंस नहीं है। मेरी अपनी

कोई आत्मा नहीं है। मैं हवा का एक झोंका हूं। मैं एक सूखा पत्ता हूं कि हवाएं जहां ले जाएं, बस चला जाऊं; कि पानी की लहरें जहां मुझे बहाने लगें, बहूं। दुनिया की आंखें मुझ से कहें कि यह! तो वही सत्य हो जाए। तो फिर मेरा होना क्या है? मेरी आत्मा क्या है? फिर मेरा अस्तित्व क्या है? फिर मेरा जीवन क्या है? फिर मैं एक झूठ हूं। एक बड़े नाटक का हिस्सा हूं।
और बड़े मजे की बात यह है कि जिस भीड़ से मैं डर रहा हूं, वह भी मेरे ही जैसे झूठे लोगों की भीड़ है। अजीब बात है! वे सब भी मुझ से डर रहे हैं जिनसे मैं डर रहा हूं। हम सब एक-दूसरे से डर रहे हैं। और इस डर में हमने एक तस्वीर बना ली है जो सच्ची नहीं है। और भीतर जाने में डरते हैं कि कहीं यह तस्वीर न गिर जाए, कहीं यह तस्वीर न गिर जाए।
एक बात यह है कि एक सप्रेशन, एक दमन चल रहा है। आदमी जो भीतर है, उसे दबा रहा है; और जो नहीं है, उसे थोप रहा है, उसका आरोपण कर रहा है। एक द्वंद्व, एक कांफ्लिक्ट खड़ी हो गई है। एक-एक आदमी अनेक-अनेक आदमियों में बंट गया है, मल्टी साइकिक हो गया है। एक-एक आदमी एक-एक आदमी नहीं है, चौबीस घंटे में हजार बार बदल जाता है! हर नया आदमी सामने आता है और नई तस्वीर बनती है उसकी आंख में, और वह आदमी बदल जाता है!
आप जरा ख्याल करना, अपनी पत्नी के सामने आप दूसरे आदमी होते हो, अपने बेटे के सामने दूसरे, अपने बाप के सामने तीसरे, अपने नौकर के सामने चौथे, अपने मालिक के सामने छठवें। दिन भर आप अलग-अलग आदमी होते हो। सामने आदमी बदला, और आपको बदलना पड़ता है। क्योंकि आप तो कुछ हो ही नहीं। आप तो वह जो दूसरे की आंखें हैं उनको देख कर कुछ हो। अपने नौकर के सामने देखा है आप कितने शानदार आदमी हो जाते हो। और अपने मालिक के सामने? वह जो हालत आपके नौकर की आपके सामने होती है, वह अपने मालिक के सामने आप की हो जाती है!
आप कुछ हो या नहीं? कि हर दर्पण आपको बनाता है? जो भी सामने आ जाता है, वही आपको बना देता है! बहुत अजीब है! हम हैं? हम हैं ही नहीं शायद। हम एक अभिनय हैं, एक एक्टिंग। सुबह से सांझ तक अभिनय चल रहा है। सुबह कुछ हैं, दोपहर कुछ हैं, सांझ कुछ हैं। जरा खीसे में पैसे हों, तब आप वही आदमी रह जाते हैं? बिल्कुल दूसरे आदमी हो जाते हैं। जब पैसे नहीं होते खीसे में, तब बिल्कुल दूसरे आदमी हो जाते हैं। जान ही निकल जाती है भीतर से। आदमी और हो गए।
जरा पद पर देखें किसी को, किसी मिनिस्टर को देखें। और फिर वह मिनिस्टर
न रह जाए, तब उसको देखें। जैसे कि कपड़े की क्रीज निकल गई हो। सब खत्म। आदमी गया। आदमी था ही नहीं।
मैंने सुना है, जापान में एक फकीर था एक गांव में, एक सुंदर युवा। था
वह फकीर। सारा गांव उसे श्रद्धा करता और आदर देता। लेकिन एक दिन सारी बात बदल गई। गांव में अफवाह उड़ी कि उस फकीर से किसी स्त्री को बच्चा रह गया। वह बच्चा पैदा हुआ है। उस स्त्री ने अपने बाप को कह दिया है कि उस फकीर का बच्चा है, यह फकीर उसका बाप है। सारा गांव टूट पड़ा उस फकीर पर। जाकर उसकी झोपड़ी में आग लगा दी। सुबह सर्दी के दिन थे, वह बाहर बैठा था। उसने पूछा कि मित्रो, यह क्या कर रहे हो? क्या बात है?
तो जाकर उन्होंने उस बच्चे को उसके ऊपर पटक दिया और कहा, हमसे पूछते
हो क्या बात है? यह बेटा तुम्हारा है!
उस फकीर ने कहा, इ.ज इट सो? ऐसी बात है? अब जब तुम कहते हो तो ठीक ही कहते होओगे। क्योंकि भीड़ तो कुछ गलत कहती ही नहीं, भीड़ तो हमेशा सच ही कहती है। अब जब तुम कहते हो तो ठीक ही कहते होओगे।
वह बेटा रोने लगा, तो वह उसे समझाने लगा। गांव भर के लोग गालियां देकर वापस लौट आए उस बच्चे को उसी के पास छोड़ कर।
फिर दोपहर को जब वह भीख मांगने निकला, तो उस बच्चे को लेकर भीख मांगने निकला गांव में। कौन उसे भीख देगा? आप भीख देते? कोई उसे भीख नहीं देगा।
जिस दरवाजे पर गया, दरवाजे बंद हो गए। उस रोते हुए छोटे बच्चे को लेकर उस फकीर का उस गांव से गुजरना--बड़ी अजीब सी हालत रही होगी। बच्चों की, लोगों की भीड़ उसके पीछे गालियां देती हुई।

फिर वह उस दरवाजे के सामने पहुंचा, जिसकी बेटी का यह लड़का है। और उसने
उस दरवाजे के सामने आवाज लगाई कि कसूर मेरा होगा इसका बाप होने में, लेकिन इसका मेरे बेटे होने में तो कोई कसूर नहीं हो सकता। बाप होने में मेरी गलती होगी, लेकिन इसकी तो कोई गलती नहीं हो सकती। कम से कम इसे तो दूध मिल जाए।
वह लड़की द्वार पर खड़ी थी। उसके प्राण कंप गए! फकीर को भीड़ में घिरा हुआ, पत्थर खाते हुए देख कर--वह उस बच्चे को बचा रहा है, उसके माथे से खून बह रहा है--सच्ची बात छिपाना मुश्किल हो गई। उसने अपने बाप के पैर पकड़ कर कहा कि क्षमा करें, इस फकीर को तो मैं पहचानती भी नहीं। सिर्फ इसके असली बाप को बचाने के लिए मैंने इस फकीर का झूठा नाम ले लिया!
वह बाप आकर फकीर के पैरों पर गिर पड़ा और बच्चे को छीनने लगा और कहा, क्षमा कर दें।
उस फकीर ने पूछा, लेकिन बात क्या है? बेटे को छीनते क्यों हो?
उसके बाप ने कहा--लड़की के बाप ने--कि आप कैसे नासमझ हैं! आपने सुबह ही क्यों न बताया कि यह बेटा आपका नहीं है? आप छोड़ दें, यह बेटा आपका नहीं है, हमसे भूल हो गई।
वह फकीर कहने लगा, इ.ज इट सो? बेटा मेरा नहीं है? पर तुम्हीं तो सुबह कहते थे कि तुम्हारा है। और भीड़ तो कभी झूठ बोलती नहीं। अब तुम जब बोलते हो कि नहीं है मेरा, तो नहीं होगा।
लेकिन लोग कहने लगे कि तुम कैसे पागल हो! तुमने सुबह कहा क्यों नहीं
कि बेटा तुम्हारा नहीं है? तुम इतनी निंदा और अपमान झेलने को राजी क्यों हुए?
वह फकीर कहने लगा, मैंने तुम्हारी कभी चिंता नहीं की कि तुम क्या सोचते हो। तुम आदर देते हो कि अनादर। तुम श्रद्धा देते हो कि निंदा। मैंने तुम्हारी आंखों की तरफ देखना बंद कर दिया है। क्योंकि मैं अपनी तरफ देखूं कि तुम्हारी आंखों की तरफ देखूं! और जब तक मैंने तुम्हारी तरफ देखा, तब तक अपने को देखना मुश्किल था। क्योंकि तुम्हारी आंख तो प्रतिपल बदल रही है, और हर आदमी की आंख अलग है, ये हजार-हजार दर्पण हैं, मैं किस-किस में झांकूं? मैंने अपने में ही झांकना शुरू कर दिया है। अब मुझे फिक्र नहीं कि तुम क्या कहते हो। अगर तुम कहते हो बेटा मेरा, तो सही, मेरा ही होगा। किसी का तो होगा! मेरा ही सही। अब तुम कहते हो, नहीं। तुम्हारी मर्जी, नहीं होगा मेरा। लेकिन मैंने तुम्हारी आंखों में देखना बंद कर दिया है।
और वह फकीर कहने लगा, मैं तुमसे भी कहता हूं कि कब वह दिन आएगा कि तुम दूसरों की आंखों में देखना बंद करोगे और अपनी तरफ देखना शुरू करोगे?
यह दूसरा सूत्र आपसे कहना चाहता हूं जीवन-क्रांति काः मत देखें दूसरों की आंखों में कि आप क्या हैं। वहां जो भी तस्वीर बन रही है, वह आपके वस्त्रों की तस्वीर है, वह आपकी दिखावट है, वह आपका नाटक है, वह आपकी एक्टिंग है--वह आप नहीं हैं! क्योंकि आप तो अभी प्रकट ही नहीं हो सके जो आप हैं, उसकी तस्वीर कैसे बनेगी! आपने जो दिखाना चाहा है, वह दिख रहा है। लेकिन आप क्या हैं, उस द्वार से ही जीवन की यात्रा होगी।
भीड़ से बचना धार्मिक आदमी का पहला कर्तव्य है। लेकिन भीड़ से बचने का मतलब नहीं कि जंगल भाग जाएं। भीड़ से बचने का मतलब क्या है? समाज से मुक्त होना धार्मिक आदमी का पहला लक्षण है, लेकिन समाज से मुक्त होने का क्या मतलब है? समाज से मुक्त होने का मतलब नहीं है कि एक आदमी भाग जाए जंगल में। वह समाज से मुक्त होना नहीं है। वह समाज की ही धारणा है संन्यासी की कि जो आदमी गांव छोड़ कर भाग जाता है, समाज उसको आदर देता है। वह समाज से भागना नहीं है। वह समाज की ही धारणा का, समाज के ही दर्पण में अपना चेहरा देखना है। गेरुआ वस्त्र पहन कर खड़े हो जाना संन्यासी हो जाना नहीं है। वह समाज की आंखों में दर्पण बनाना है, उस दर्पण में अपना प्रतिबिंब देखना है। वह गेरुआ वस्त्र उनकी आंखों में दिखाई पड़ने लगता है, जो आदर देते हैं। अगर गेरुआ वस्त्र को आप आदर देना बंद कर दें, फिर मैं गेरुआ वस्त्र नहीं पहनूंगा।

वह मैं आपकी आंखों में देखता हूं कि क्या आदर लाता है? अगर समाज आदर देता है एक आदमी को पत्नी और बच्चों को छोड़ कर भाग जाने के लिए, तो आदमी भाग जाता है। यहां भी वह समाज की आंखों में देख रहा है।
नहीं, यह समाज को छोड़ना नहीं है। समाज को छोड़ने का अर्थ हैः समाज की आंखों में अपने प्रतिबिंब को देखना बंद कर दें। अगर जिंदगी में कोई भी क्रांति चाहिए, तो लोगों की, भीड़ की आंखों को दर्पण न समझें। वे धोखे के स्थान हैं, जहां वस्त्र दिखाई पड़ते हैं।
लेकिन इस दुनिया में वस्त्रों की कीमत है। और अगर बाहर की यात्रा करनी है, तो फिर मेरी बात कभी मत मानना। नहीं तो बाहर की यात्रा बहुत मुश्किल हो जाएगी। इस दुनिया में वस्त्रों की कीमत है, आत्माओं की कोई कीमत नहीं है।
मैंने सुना है, कवि गालिब को एक दफा बहादुर शाह ने निमंत्रण दिया था। सम्राट ने बुलाया था कि आओ भोजन को।
गालिब था गरीब आदमी। अब तक ऐसी दुनिया नहीं बन सकी कि कवि के पास भी खाने-पीने को पैसा हो सके। यह नहीं हो सका। अच्छे आदमी को रोटी जुटानी अभी भी बहुत मुश्किल है। गालिब तो गरीब आदमी था। कविताएं लिखी थीं ऊंची, तो ऊंची कविताओं से क्या होता है? रोटियां तो नहीं आतीं। कपड़े फटे-पुराने थे। मित्रों ने कहा, बादशाह के वहां जा रहे हो, इन कपड़ों से नहीं चलेगा। बादशाहों के महल कपड़ों को पहचानते हैं। गरीब के घर में यह भी हो सकता है कि कभी बिना कपड़ों के भी चल जाए, लेकिन बादशाहों के महल में कपड़े पहचाने जाते हैं। मित्रों ने कहा कि हम उधार कपड़े ला देते हैं, तुम पहन कर चले जाओ। जरा आदमी तो मालूम पड़ोगे।
गालिब ने कहा, उधार कपड़े! यह तो बड़ी बुरी बात होगी कि मैं किसी और के कपड़े पहन कर जाऊं। मैं जैसा हूं, हूं। किसी और के कपड़े पहनने से क्या फर्क पड़ जाएगा? मैं तो मैं ही रहूंगा।
मित्रों ने कहा, छोड़ो ये फलसफे की बातें। इन तत्व-दर्शन की बातों से वहां दरवाजे पर नहीं चलेगा। हो सकता है पहरेदार वापस लौटा दें! भिखमंगे मालूम पड़ते हो।
गालिब ने कहा, मैं तो जो हूं, हूं। गालिब को बुलाया है, कपड़ों को तो नहीं बुलाया। गालिब जाएगा।
नासमझ। कहना चाहिए नादान। नहीं माना गालिब और चला गया।
दरवाजे पर जाकर जाने लगा तो द्वारपाल ने बंदूक आड़ी कर दी और कहा, कहां भीतर जाते हो?
गालिब ने कहा कि मैं महाकवि गालिब हूं। सुना है नाम कभी? सम्राट ने बुलाया है। सम्राट का मित्र हूं, भोजन पर बुलाया है।
उस सिपाही ने कहा, हटो रास्ते से! दिन भर जो भी ऐरा-गैरा आता है, सम्राट
का मित्र ही बताता है अपने को! रास्ते से चलो अपने, नहीं उठा कर बंद करवा दूंगा।
गालिब ने कहा, क्या बातें कहते हो! मुझे पहचानते नहीं?
उसने कहा, तुम्हारे कपड़े बता रहे हैं कि तुम कौन हो! फटे जूते बता रहे हैं कि तुम कौन हो! अपनी शक्ल देखो आईने में जाकर कि कौन हो!
गालिब दुखी वापस लौट गया। मित्रों से कहा कि तुम ठीक कहते थे, वहां कपड़े पहचाने जाते हैं। ले आओ उधार कपड़े कहां हैं।
मित्रों ने कपड़े लाकर रखे थे। उधार कपड़े पहन कर गालिब फिर पहुंच गया। वही द्वारपाल झुक-झुक कर नमस्कार करने लगा कि आइए। गालिब बहुत हैरान कि कैसी दुनिया है!
भीतर गया तो बहादुर शाह ने कहा, मैं बड़ी देर से प्रतीक्षा कर रहा हूं! गालिब हंसने लगा, कुछ बोला नहीं। फिर भोजन लगा दिया गया। सम्राट खुद भोजन के लिए सामने बैठा--भोजन कराने के लिए। गालिब ने भोजन का कौर बनाया, अपने कोट को खिलाने लगा, कि ले कोट खा! पगड़ी को खिलाने लगा, कि ले पगड़ी खा! सम्राट ने कहा, आपके भोजन करने की बड़ी अजीब तरकीबें मालूम पड़ती हैं।
यह कौन सी आदत? यह आप क्या कर रहे हैं?

गालिब ने कहा कि मैं तो आया था और लौट चुका। अब कपड़े आए हैं उधार। अब
जो आए हैं, उन्हीं को भोजन करा रहा हूं!
बाहर की दुनिया में कपड़े चलते हैं। बाहर की दुनिया में कपड़े ही चलते हैं! वहां आत्माओं का चलना बहुत मुश्किल है। क्योंकि बाहर जो भीड़ इकट्ठी है, वह कपड़े वालों की भीड़ है। वहां आत्मा को चलाने की बात तपश्चर्या हो जाती है। लेकिन वहां जीवन नहीं मिलता। वहां हाथ में कपड़े और लाश रह जाती है अकेली। वहां जिंदगी नहीं मिलती, राख। वहां आखिर में जिंदगी की कुल संपदा राख होती है--जली हुई। अखबार की कटिंग रख लेना साथ में, तो बात अलग है। मरते वक्त अखबार में क्या-क्या छपा था, उसको रख ले कोई साथ, तो बात अलग है। लेकिन मुट्ठी में अखबार भी राख हो जाएगा।
जीवन ही चूक जाता है। जीवन है भीतर। और भीतर वे ही मुड़ सकते हैं, जो दूसरों की आंखों में देखने की कमजोरी छोड़ देते हैं और अपनी आंखों के भीतर झांकने का साहस जुटाते हैं।
इसलिए दूसरा सूत्र हैः भीड़ से सावधान! बीवेअर ऑफ दि क्राउड!
वह चारों ओर से घेरे हुए है भीड़। और जिंदा लोगों की भीड़ ही नहीं घेरे हुए है, मुर्दों की भीड़ भी घेरे हुए है। करोड़ों-करोड़ों वर्षों से जो भीड़ इकट्ठी होती चली गई है सारी दुनिया में, उसका दबाव है चारों तरफ से। और एक-एक आदमी की छाती पर वह सवार है, और एक-एक आदमी उनकी आंखों में देख कर अपने को बना रहा है, सजा रहा है। वह भीड़ जैसा कहती है, वैसा होता चला जाता है। फिर उसकी अपनी आत्मा कभी पैदा नहीं हो पाती। उसके जीवन के बीज में कभी अंकुर नहीं आ पाता। क्योंकि कभी वह अपने बीज की तरफ ध्यान ही नहीं देता है। बीज की तरफ उसकी आंख ही नहीं जाती। उसके प्राणों की धारा ही कभी प्रवाहित नहीं होती उस तरफ।
दुनिया में जिन्हें भीतर की तरफ जाना है, उन्हें बाहर की चिंता थोड़ी छोड़ देनी पड़ती है--कौन क्या कहता है? कौन क्या सोचता है?
नहीं, सवाल यह नहीं है कि मैं क्या हूं, इस संबंध में कौन क्या सोचता है। सवाल यह है कि मैं क्या हूं और मैं क्या जानता हूं? अगर जीवन में क्रांति लानी है तो सवाल यह है कि मैं क्या हूं? मैं क्या पहचानता हूं अपने को?
और स्मरण रहे, जो आदमी अपने भीतर पहचानना शुरू करता है, उसके भीतर बदलाहट उसी क्षण शुरू हो जाती है। क्योंकि भीतर जो गलत है, उसे पहचान कर बरदाश्त करना मुश्किल है, असंभव है। अगर पैर में कांटा गड़ा है, तो वह तभी तक गड़ा रह सकता है जब तक उसका हमें पता नहीं है। जैसे ही पता चला, पैर से कांटे को निकालना मजबूरी हो जाएगी।
एक बच्चा स्कूल के मैदान पर खेल रहा हो--हाकी खेल रहा हो। पैर में चोट
लग गई हो, खून बह रहा हो। उसे पता नहीं चलेगा, वह हाकी में संलग्न है, वह आक्युपाइड है। उसकी सारी अटेंशन, उसका सारा ध्यान हाकी पर लगा हुआ है। वह जो गोल करना है, उस पर अटका हुआ है; वे जो चारों तरफ खिलाड़ी हैं, उनसे अटका हुआ है; वह जो प्रतियोगिता चल रही है, उसमें उलझा हुआ है। उसे पता भी नहीं कि उसके पैर में खून बह रहा है। वह दौड़ता रहेगा, दौड़ता रहेगा... खेल बंद हो जाएगा, और अचानक ख्याल आएगा कि पैर से खून बह रहा है! लेकिन खून बहुत देर से बह रहा है, इतनी देर से पता नहीं चला? अब वह भागेगा और मलहम-पट्टी करेगा। लेकिन इतनी देर पता नहीं चला? तब तक सवाल ही नहीं था।
हम बाहर देख रहे हैं। गोल करना है, वह देख रहे हैं। प्रतियोगिता चल रही है, वह देख रहे हैं। लोगों की आंख में देख रहे हैं। हमें पता ही नहीं चलता कि भीतर कितने कांटे हैं और कितने घाव हैं! भीतर पता नहीं चलता, कितना अंधकार है! भीतर पता नहीं चलता, कितनी बीमारियां हैं! उलझे रहें, उलझे रहें, जिंदगी बीत जाएगी और पता नहीं चलेगा।
एक बार हटाएं आंख बाहर से और भीतर के घावों को देखें! और मैं आपसे कहता हूं, उन्हें देखना उनके बदलने का पहला सूत्र है। वहां दिखाई पड़ा कि फिर आप बरदाश्त नहीं कर सकते। फिर आपको बदलना ही पड़ेगा।
और बदलना कठिन नहीं है। क्योंकि जो दुख दे रहा है, उसे बदलना कभी भी कठिन नहीं होता, सिर्फ भूले रखना आसान है। बदलना कठिन नहीं है, लेकिन भूले

रखना बहुत आसान है। और जब तक भूला रहे, तब तक जीवन में कोई क्रांति नहीं होगी।
जीवन की क्रांति का दूसरा सूत्र हैः नहीं, दूसरों की आंखों में नहीं। अपनी आंख में, अपने भीतर, अपनी तरफ, मैं क्या हूं? यही सवाल है, यही असली समस्या है व्यक्ति के सामने कि मैं क्या हूं? जैसा भी हूं, उसको ही देखना है और साक्षात करना है।
लेकिन हम? हमें पता ही नहीं। कोई हमसे पूछे कि आप कौन हैं? तो हम कहेंगे--फलां आदमी का बेटा हूं, फलां मोहल्ले में रहता हूं, फलां गांव में रहता हूं। यही परिचय है हमारा। ये लेबल जो हम ऊपर से चिपकाए हुए हैं, यह हमारी पहचान है, यह हमारी जिंदगी का सबूत है, यह हमारी जिंदगी का प्रमाण है, यह हमारी जानकारी है अपने बाबत। पता ही नहीं है कि कौन जीवन-चेतना भीतर खड़ी है। ऊपर से कागज चिपकाए हुए हैं। और वे भी दूसरों के चिपकाए हुए हैं। किसी ने एक नाम चिपका दिया है। उसी नाम को जिंदगी भर लिए घूम रहे हैं। उस नाम को कोई गाली दे दे तो लड़ने को तैयार हो जाएंगे। बड़े पागल हैं, लेबलों को भी गाली देने से लड़ने की तैयारी करनी पड़ती है!
स्वामी राम अमेरिका गए थे। वहां के लोग बड़ी मुश्किल में पड़ गए। क्योंकि राम को कुछ लोगों ने गालियां दीं, तो राम ने मित्रों को आकर कहा कि आज बड़ा मजा हो गया, बाजार में कुछ लोग मिल गए और राम को खूब गालियां देने लगे। हम भी खड़े सुनते रहे।
लोगों ने कहा, आप पागल हो गए हैं! राम को गालियां देते रहे? कौन राम? स्वामी राम ने कहा कि यह राम, जिसको लोग राम कहते हैं। कुछ लोगों ने घेर लिया और बेटे को बहुत गालियां देने लगे। हम भी खड़े होकर देखते रहे कि राम को अच्छी गालियां पड़ रही हैं। अब हम राम हों तो झगड़े में पड़ें। हम तो राम नहीं हैं। हम तो जो हैं, उसका कोई नाम नहीं है। नाम तो किसी का दिया हुआ है। वह तो समाज का दिया हुआ है, हमारा दिया हुआ तो नहीं है। हम तो कुछ और हैं। जब नाम नहीं था, तब भी थे। जब नाम नहीं रह जाएगा, तब भी होंगे।
अभी भी रात सो जाते हैं--नाम मिट जाता है, समाज भी मिट जाता है--फिर भी
हम होते हैं। आप मिट जाते हैं रात? न पत्नी रह जाती, न बेटा रह जाता आपका, न घर रह जाता, न धन-दौलत रह जाती, न पद-प्रतिष्ठा रह जाती, फिर भी आप रह जाते हैं। सब मिट जाता है। वह जो सोसायटी देती है, वह बाहर ही छूट जाता है। वह भीतर जाता ही नहीं। मरने के वक्त भी भीतर नहीं जाएगा। और ध्यान के वक्त भी भीतर नहीं जाएगा। वह जो समाज देता है, वह बाहर है, और बाहर ही रह जाता है। लेकिन हम इस बाहर को अपना व्यक्तित्व समझे हुए हैं! वह भूल से मुक्त होना जरूरी है। अन्यथा कोई व्यक्ति जीवन की यात्रा पर एक कदम आगे नहीं बढ़ सकता है।
सुबह मैंने एक सूत्र कहा हैः सिद्धांतों से मुक्त हो जाएं। जो सिद्धांतों से बंधा है, वह जीवन के रास्ते पर नहीं जाएगा।
दूसरा सूत्र कहता हूंः भीड़ से मुक्त हो जाएं। जो भीड़ का गुलाम है, वह कभी भी जीवन के रास्ते पर नहीं जाता है।
आने वाले दिनों में और कुछ सूत्र कहूंगा। इन सूत्रों को सुनें, लेकिन सुनने भर से कुछ होने वाला नहीं है। थोड़ा सा भी प्रयोग करेंगे, तो एक द्वार खुलेगा, कुछ दिखाई पड़ना शुरू होगा।
धर्म एक नगद प्रक्रिया है। धर्म एक जीवित विज्ञान है। जो प्रयोग करता है, वह रूपांतरित हो जाता है; और उपलब्ध होता है उस सबको, जिसे पाए बिना हम व्यर्थ जीते हैं और व्यर्थ मर जाते हैं; और जिसे पा लेने पर जीवन एक धन्यता हो जाती है; और जिसे पा लेने पर जीवन कृतार्थ हो जाता है; और जिसे पा लेने पर सारा जगत परमात्मा में रूपांतरित हो जाता है। क्योंकि जिस दिन भीतर दिखाई पड़ता है कि परमात्मा है, उसी दिन यह भ्रम मिट जाता है कि बाहर कोई और है। फिर वही रह जाता है। जो भीतर दिखाई पड़ता है, वही बाहर भी प्रमाणित हो जाता है।
और जगत के मूल सत्य को जान लेना, जीवन को अनुभव कर लेना है। और जीवन को अनुभव कर लेना मृत्यु के ऊपर उठ जाना है।
फिर कोई मृत्यु नहीं है। जीवन की कोई मृत्यु नहीं है।

जो मरता है, वह समाज के द्वारा दिया गया झूठा व्यक्तित्व। जो मरता है,
वह प्रकृति के द्वारा दिया गया झूठा शरीर। जो नहीं मरता है, वह जीवन है। लेकिन उसका हमें कोई पता नहीं है!
पहले समाज से हटें--समाज के झूठे व्यक्तित्व से हटें।
फिर प्रकृति के दिए गए व्यक्तित्व से हटेंगे। उसकी कल मैं बात करूंगा
कि प्रकृति के दिए गए शरीर से कैसे हटें। और फिर हम वहां पहुंच सकते हैं, जहां जीवन है।
मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं।
और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

क्रांति सूत्र
तीसरा प्रवचन

दमन से मुक्ति

मेरे प्रिय आत्मन्!
जीवन-क्रांति के सूत्र, इस चर्चा के तीसरे सूत्र पर आज आपसे बात करनी है।
पहला सूत्रः सिद्धांत, शास्त्र और वाद से मुक्ति।
दूसरा सूत्रः भीड़ से, समाज से--दूसरों से मुक्ति।
और तीसरा सूत्र आज। इस तीसरे सूत्र को समझने के लिए मन का एक बहुत अदभुत राज समझ लेना आवश्यक है।
मन की बड़ी अदभुत प्रक्रिया है, साधारणतः पहचान में न पड़े ऐसी। और वह प्रक्रिया यह है कि मन को जिस ओर से बचाने की कोशिश की जाए, मन उसी ओर जाना शुरू हो जाता है; जहां से मन को हटाया जाए, मन वहीं पहुंच जाता है; जिस तरफ पीठ की जाए, मन के सामने वही सदा के लिए उपस्थित हो जाता है। निषेध मन के लिए निमंत्रण है, विरोध मन के लिए बुलावा है। और मनुष्य-जाति इस नियम को बिना समझे आज तक जीने की कोशिश की है!
फ्रायड ने अपनी जीवन-कथा में एक छोटा सा उल्लेख किया है। लिखा है उसने
कि एक संध्या विएना के बगीचे में वह अपनी पत्नी और अपने छोटे बेटे के साथ घूमने गया। देर तक फ्रायड अपनी पत्नी से बातचीत करता रहा, टहलता रहा। फिर सांझ हो गई, द्वार बंद होने लगे बगीचे के, तो वे दोनों बगीचे के द्वार पर आए, तब पत्नी को ख्याल आया कि उनका बेटा तो न मालूम कितनी देर से उन्हें छोड़ कर चला गया है! इतने बड़े बगीचे में वह पता नहीं कहां होगा! द्वार बंद होने के करीब हैं, उसे कहां खोजूं? फ्रायड की पत्नी चिंतित हो गई और घबड़ा गई।
फ्रायड ने कहा, घबड़ाओ मत! एक प्रश्न मैं पूछता हूं, तुमने उसे कहीं जाने को मना तो नहीं किया? अगर मना किया हो तो सौ में निन्यानबे मौके तुम्हारे बेटे के उसी जगह होने के हैं, जहां तुमने मना किया हो।
उसकी पत्नी ने कहा, मैंने मना किया था कि फव्वारे पर मत पहुंच जाना। फ्रायड ने कहा, अगर तुम्हारे बेटे में थोड़ी भी बुद्धि है, तो वह फव्वारे पर होगा। कई बेटे ऐसे भी होते हैं, जिनमें बुद्धि नहीं होती। उनका हिसाब रखना फिजूल है।
पत्नी बहुत हैरान हुई। वे गए दोनों भागे हुए, वह बेटा फव्वारे पर पैर लटकाए हुए पानी से खिलवाड़ करता था।
फ्रायड की पत्नी उससे कहने लगी, बड़ा आश्चर्य! तुमने कैसे पता लगा लिया
कि बेटा वहां होगा?
फ्रायड ने कहा, आश्चर्य इसमें कुछ भी नहीं। जहां रोका जाए जाने से मन को, मन वहां जाने के लिए आकर्षित हो जाता है। जहां कहा जाए, मत जाओ! वहां एक छिपा हुआ रस, एक रहस्य शुरू हो जाता है। फ्रायड ने कहा, यह तो आश्चर्य नहीं है कि मैंने तुम्हारे बेटे का पता लगा लिया, आश्चर्य यह है कि मनुष्य-जाति इस छोटे से सूत्र का पता अब तक नहीं लगा पाई है!
और सच ही मनुष्य-जाति अब तक इस छोटे से सूत्र का पता नहीं लगा पाई। और
इस छोटे से सूत्र को बिना जाने जीवन का कोई रहस्य कभी उदघाटित नहीं हो सकता। इस छोटे से सूत्र का पता न होने के कारण मनुष्य-जाति ने अपना सारा धर्म, सारी नीति, सारी समाज की व्यवस्था सप्रेशन पर, दमन पर खड़ी की है। मनुष्य का जो व्यक्तित्व हमने खड़ा किया है, वह दमन पर खड़ा है, दमन उसकी नींव है।
और दमन पर खड़ा हुआ आदमी लाख उपाय करे, जीवन की ऊर्जा का साक्षात्कार उसे कभी नहीं हो सकता। क्योंकि जिस-जिस का उसने दमन किया है, मन उसी से उलझा-उलझा नष्ट हो जाता है।
थोड़ा सा प्रयोग करें, और पता चल जाएगा। किसी बात से मन को बचाने की कोशिश करें, और पाएंगे मन उसी बात के आस-पास घूमने लगा। किसी विचार को भूलने की कोशिश करें, और वही भूलने की कोशिश उस बात को स्मरण करने का आधार

बन जाएगी। किसी तत्व को, किसी विचार को, किसी स्मृति को, किसी इमेज को, किसी प्रतिमा को मन से निकालने की कोशिश करें, और मन के मंदिर में वही प्रतिमा विराजमान हो जाएगी। लड़ें और देखें, और पाएंगे कि जिससे लड़ेंगे, उसी से हार जाएंगे; जिससे भागेंगे, वही पीछा करेगा। जैसे छाया पीछा करती है। भागते चले जाएं, और छाया उतनी ही तेजी से पीछा करती है।
मन को हम भगा रहे हैं। और मन को हमने इतनी जगह से भगाया है कि हम यह भूल
ही गए हैं अब कि मन को कहां होना चाहिए। मन वहीं-वहीं हो गया है, जहां-जहां हमने उसे इनकार किया है; जहां-जहां हमने द्वार बंद किए हैं, मन वहीं दस्तक दे रहा है।
क्रोध से लड़ें--और मन क्रोध के पास ही खड़ा हो जाएगा। हिंसा से लड़ें--और
मन हिंसक हो जाएगा। मोह से लड़ें--और मन मोह से बंध जाएगा। लोभ से लड़ें--और मन लोभ में गिर जाएगा। धन से लड़ें--और मन धन के प्रति ही पागल हो उठेगा। काम से लड़ें, सेक्स से लड़ें--और मन सेक्सुअल हो जाएगा, कामुक हो जाएगा। जिससे लड़ेंगे, मन वही हो जाएगा। यह बड़ी अजीब बात है! जिसको दुश्मन बनाएंगे, मन पर उस दुश्मन की ही प्रतिछवि अंकित हो जाएगी। मित्रों को मन भूल जाता है, शत्रुओं को मन कभी भी नहीं भूलता है।
लेकिन यह हो सकता है कि जिससे हम लड़ें, मन उसके साथ ढल जाए, लेकिन उसकी शक्ल बदल ले, नाम बदल ले।
मैंने सुना है, एक गांव में एक बहुत क्रोधी आदमी था। इतना क्रोधी कि उसने अपनी पत्नी को धक्का देकर कुएं में गिरा दिया। जब पत्नी मर गई और उसकी लाश निकाली गई, तो वह क्रोधी आदमी जैसे एक नींद से जाग गया! उसे याद आया कि उसने जिंदगी में सिवाय क्रोध के और कुछ भी नहीं किया! इस दुर्घटना में वह एकदम सचेत हो गया। उसे बड़ा पश्चात्ताप हुआ। गांव में एक मुनि आए थे। वह मुनि के दर्शन को गया और उनके चरणों में सिर रख कर रोया, और उसने कहा कि मैं इस क्रोध से कैसे छुटकारा पाऊं? क्या रास्ता है? मैं कैसे इस क्रोध से बचूं?
मुनि ने कहा कि संन्यासी हो जाओ। छोड़ दो वह सब, जो तुम कल तक पकड़े थे। लेकिन मजा यह है कि जिसे छोड़ो, छोड़ने के कारण ही वह और पकड़ जाता है। लेकिन वह थोड़ी गहरी बात है, वह एकदम से दिखाई नहीं पड़ती!
कहा, छोड़ दो सब! क्रोध को भी छोड़ दो! संन्यासी हो जाओ, शांत हो जाओ!
अब कोई क्रोध को छोड़ सकता है?
वह आदमी संन्यासी हो गया। उसने तत्क्षण वस्त्र फेंक दिए और नग्न हो गया! और उसने कहा कि मुझे दीक्षा दें इसी क्षण!
मुनि बहुत हैरान हुए। बहुत लोग उन्होंने देखे थे, ऐसा संकल्पवान आदमी नहीं देखा था जो इतनी शीघ्रता से संन्यासी हो जाए। उन्होंने कहा कि तू अदभुत है! तेरा संकल्प महान है! तेरा संयम महान है! तू इतनी शीघ्रता से संन्यासी होने को तैयार हो गया है सब छोड़ कर!
लेकिन मुनि को भी पता नहीं कि यह क्रोध ही है। यह क्रोध का ही दूसरा रूप है। वह आदमी, जो अपनी पत्नी को एक क्षण में धक्का दे सकता है, वह एक क्षण में नंगा खड़ा होकर संन्यासी भी हो सकता है। इन दोनों बातों में विरोध नहीं है। ये एक ही क्रोध के दो रूप हैं।
मुनि बहुत प्रभावित हुए थे। उन्होंने उसे दीक्षा दे दी और उसका नाम
रख दिया--शांतिनाथ।
वह मुनि शांतिनाथ हो गया। और भी शिष्य थे मुनि के, लेकिन उस मुनि शांतिनाथ का मुकाबला करना बहुत मुश्किल था, क्योंकि उतना क्रोधी उनमें कोई भी नहीं था। दूसरे दिन में एक बार भोजन करते, तो शांतिनाथ दो-दो दिन तक भोजन नहीं करते। क्रोधी आदमी कुछ भी कर सकता है! दूसरे सीधे रास्ते से चलते थे, तो मुनि शांतिनाथ उलटे, कांटों भरे रास्ते पर चलते! दूसरे छाया में बैठते थे, तो मुनि शांतिनाथ धूप में खड़े रहते! सूख गया शरीर, कृश हो गया, काला पड़ गया, पैर में घाव पड़ गए; लेकिन मुनि की कीर्ति फैलनी शुरू हो गई, कि मुनि महान तपस्वी हैं। वह सब क्रोध ही था, जो स्वयं पर लौट आया था। वह क्रोध था, जो दूसरों पर प्रकट होता रहा था, अब वह अपने पर ही प्रकट हो रहा था।

सौ में से निन्यानबे तपस्वी स्वयं पर लौटे हुए क्रोध का परिणाम होते हैं। दूसरों को सताने की चेष्टा रूपांतरित होकर खुद को सताने की चेष्टा भी बन सकती है। असल में, सताने की इच्छा असली सवाल है। किसको सताने का, यह बड़ा सवाल नहीं है। दूसरों को भी सताया जा सकता है, खुद को भी सताया जा सकता है। सताने में मजा है, क्रोधी आदमी का रस है।
अब उसने दूसरों को सताना बंद कर दिया था, क्योंकि दूसरे तो थे ही नहीं;
अब तो वही था, अपने को ही सता रहा था। और पहली बार एक नई घटना घटी थीः दूसरों को सताने में लोग अपमान करते थे, खुद को सताने में लोग सम्मान करने लगे थे! लोग कहते थे महातपस्वी! मुनि की कीर्ति फैलती गई। जितनी कीर्ति फैलती गई, मुनि अपने को उतना ही टार्चर, उतना ही अपने साथ दुष्टता करते चले गए। जितनी उन्होंने दुष्टता की, उतना यश, उतना सम्मान। दो-चार वर्षों में ही गुरु से भी ज्यादा उनकी प्रतिष्ठा हो गई। फिर वे देश की राजधानी में आए।
मुनियों को देश की राजधानी में जाना बहुत जरूरी रहता है। अगर आप संन्यासियों को खोजना चाहते हों तो हिमालय जाने की कोई जरूरत नहीं है, देश की राजधानियों में चले जाइए और वहां सब मुनि और सब संन्यासी अड्डा जमाए हुए मिल जाएंगे।
वे मुनि भी राजधानी की तरफ चले। राजधानी में पुराना एक मित्र रहता था। उसे खबर मिली, वह बहुत हैरान हुआ कि जो आदमी इतना क्रोधी था, वह शांतिनाथ हो गया! चमत्कार है! जाऊं, दर्शन करूं। वह मित्र दर्शन करने आया। मुनि अपने तखत पर सवार थे। देख लिया, मित्र को पहचान भी गए। लेकिन जो लोग भी तखत पर सवार हो जाते हैं, वे कभी किसी को आसानी से नहीं पहचानते। फिर पुराने दिनों के साथी को पहचानना ठीक भी न था। उससे हम भी कभी इसी जैसे रहे हैं, इसका पता चलता है। देख लिया, पहचाने नहीं। मित्र भी समझ गया कि पहचान तो लिया है, लेकिन फिर भी पहचान नहीं रहे हैं।
आदमी ऊपर चढ़ता ही इसलिए है कि जो पीछे छूट जाएं, उनको पहचाने न। और जब बहुत लोग उसको पहचानने लगते हैं, तो वह सबको पहचानना बंद कर देता है। पद के शिखर पर चढ़ने का रस ही यह हैः तुम्हें सब पहचानें, लेकिन तुम्हें किसी को न पहचानना पड़े।
मित्र पास सरक आया और उसने पूछा कि मुनि जी, क्या मैं पूछ सकता हूं आपका नाम क्या है?
मुनि जी को क्रोध आ गया। कहा, अखबार नहीं पढ़ते हो! रेडियो नहीं सुनते हो! मेरा नाम पूछते हो? मेरा नाम जगत-जाहिर है, मेरा नाम है मुनि शांतिनाथ! उनके बताने का ढंग, मित्र समझ गया कि कोई बदलाहट तो नहीं हुई है, आदमी
तो यह वही है, सिर्फ नग्न खड़ा हो गया है। दो मिनट दूसरी बात चलती रही। मित्र ने फिर पूछा कि महाराज, मैं भूल गया, आपका नाम क्या है?
मुनि की तो आंखों में आग जल उठी। उन्होंने कहा, मूढ़! नासमझ! इतनी भी बुद्धि नहीं है! अभी मैंने तुझे कहा था कि मेरा नाम मुनि शांतिनाथ है। मेरा नाम है मुनि शांतिनाथ।
मित्र, दो मिनट और दूसरी बातें चलती रहीं, सुनता रहा। फिर उसने पूछा
कि महाराज, मैं भूल गया, आपका नाम क्या है?
मुनि ने डंडा उठा लिया और कहा कि सिर तोड़ दूंगा! नाम समझ में नहीं आता? मेरा नाम है मुनि शांतिनाथ!
तो उस मित्र ने कहा, सब समझ में आ गया। वही समझ में आने के लिए तीन-तीन बार पूछ रहा हूं। नमस्कार है! आप वही के वही हैं, कोई फर्क नहीं पड़ा! आप वही के वही हैं, कोई फर्क नहीं पड़ा!
दमन से कभी कोई फर्क नहीं आता है। लेकिन दमन से चीजों की शक्ल बदल जाती है। और शक्ल बदल जाना बहुत खतरनाक है, क्योंकि तब बदली हुई शक्ल में उनको पहचानना भी मुश्किल हो जाता है। आदमी के भीतर काम हो, सेक्स हो, वासना हो, उसे पहचानना सरल है। लेकिन आदमी ब्रह्मचर्य की जबरदस्ती कोशिश में लग जाए, तो उस ब्रह्मचर्य के पीछे भी सेक्सुअलिटी होगी, कामुकता होगी; लेकिन उसको पहचानना बहुत मुश्किल हो जाएगा, क्योंकि वस्त्र बदल कर आ गई है वह।

ब्रह्मचर्य एक तो वह है, जो चित्त के परिवर्तन से उपलब्ध होता है, जो जीवन के अनुभव से उपलब्ध होता है। एक शांति वह है, जो जीवन की अनुभूति की छाया की तरह आती है। और एक शांति वह है, जो क्रोध को दबा कर, थोप कर ऊपर बैठ जाती है। एक ब्रह्मचर्य वह है, जो भीतर वासना को दबा कर, उसकी गर्दन को पकड़ कर खड़ा हो जाता है। ऐसा ब्रह्मचर्य कामुकता से भी बदतर है; क्योंकि कामुकता पहचान में आती है। और दुश्मन पहचान में आता हो तो उसके साथ कुछ किया जा सकता है; और दुश्मन पहचान में भी न आता हो, तब बहुत कठिनाई हो जाती है। खुद को ही पहचान मुश्किल हो जाती है।
मैं एक साध्वी के साथ समुद्र के किनारे बैठा हुआ था। वे साध्वी परमात्मा की और आत्मा की बातें कर रही थीं। हम सभी बातें आत्मा-परमात्मा की करते हैं, जिनसे हमारा कोई भी संबंध नहीं है। और जिन बातों से हमारा संबंध है, उनकी हम बात नहीं करते। क्योंकि वे छोटी-छोटी क्षुद्र बातें हैं। हम तो ऊंची बातें, आकाश की बातें करते हैं, पृथ्वी की बातें नहीं करते--जिस पृथ्वी पर चलना पड़ता है, और जिस पृथ्वी पर जीना पड़ता है, और जिस पृथ्वी पर जन्म होता है, और जिस पृथ्वी पर लाश गिरती है अंत में--उस पृथ्वी की हम बात नहीं करते! हम बात आकाश की करते हैं, जहां न हम जीते हैं, न हम चलते हैं!
वे भी आत्मा-परमात्मा की बात कर रही थीं। आत्मा-परमात्मा की बात आकाश
की बात है। हवा का झोंका आया, मेरी चादर उड़ी और साध्वी को छू गई--जैसे बिच्छू छू गया हो, वे इतनी घबड़ा गईं!
मैंने पूछा, क्या हुआ?
उन्होंने कहा, पुरुष की चादर! पुरुष की चादर छूने का निषेध है।
मैं तो बहुत हैरान हुआ। मैंने कहा, चादर भी पुरुष और स्त्री हो सकती है, यह मैंने पहली दफे जाना। चमत्कार है! चादर भी स्त्री और पुरुष हो सकती है!
लेकिन ब्रह्मचर्य चादर को भी स्त्री-पुरुष में परिवर्तित कर देता है। यह सेक्सुअलिटी की अति हो गई, कामुकता की अति हो गई।
मैंने कहा, देवी, अभी तुम आत्मा की बातें करती थीं और कहती थीं--मैं शरीर ही नहीं हूं। और अब तुम चादर भी हो? अभी क्षण भर पहले तुम शरीर भी नहीं थीं। यह शरीर तो मिट्टी है।
अब यह चादर भी सेक्स-सिंबल बन गई, अब वह भी प्रतीक बन गई। सागर की हवाओं को क्या पता कि चादर भी पुरुष की होती है, अन्यथा सागर की हवाएं भी नियम, कोई नीति का ध्यान रखतीं। गलती हो गई सागर की हवाओं से।
वे कहने लगीं कि पश्चात्ताप, प्रायश्चित्त करना पड़ेगा, उपवास करना पड़ेगा।
मैंने उनसे कहा, करो उपवास जितना करना हो! लेकिन चादर के संपर्क से भी जिसे पुरुष का भाव पैदा होता हो, उसका चित्त ब्रह्मचर्य को कभी उपलब्ध नहीं हो सकता।
लेकिन नहीं, हम इसी तरह के ब्रह्मचर्य को पकड़े रहते हैं, इसी तरह का अलोभ, इसी तरह का त्याग, इसी तरह की नैतिकता, इसी तरह का धर्म! सब झूठा है। दमन जहां है, वहां सब झूठा है। भीतर कुछ और हो रहा है, बाहर कुछ और हो रहा है।
अब इस साध्वी को दिखाई ही नहीं पड़ सकता कि यह अति कामुकता है। यह रुग्ण कामुकता हो गई; यह बीमार स्थिति हो गई कि चादर भी स्त्री और पुरुष होती है! चादर से भी डर पैदा हो जाएगा। ठीक ब्रह्मचर्य हो तो स्त्री और पुरुष ही मिट गए। जिस ब्रह्मचर्य में पुरुष और स्त्री न मिट गए हों, वह ब्रह्मचर्य नहीं है।
बुद्ध एक जंगल में कुछ दिनों साधना करते थे। एक रात, पूर्णिमा की रात, पूरा चांद आकाश में खिला था, कुछ युवा एक वेश्या को लेकर वहां आए--रात्रि भ्रमण को, नौका विहार को। पास में झील थी। लाए होंगे शराब, पीकर शराब नाचने लगे होंगे। उस वेश्या के वस्त्र छीन कर उसे नंगा कर दिया होगा। उन्हें शराब में झूमता देख कर वह वेश्या भाग गई। रात आधी उन्हें होश आया, तो खोजने निकले। वेश्या तो नहीं मिली, एक झाड़ के नीचे बुद्ध बैठे हुए मिल गए। वे

उनसे पूछने लगे कि महाशय, यहां से एक नंगी स्त्री को, एक वेश्या को भागते तो नहीं देखा? रास्ता यही है। यहीं से वह गई होगी। रास्ते पर धूल पर उसके पदचिह्न बने हैं। आप यहां कब से बैठे हुए हैं? यहां से कोई नंगी स्त्री भागती तो नहीं गई? एक वेश्या यहां से भाग गई है।
बुद्ध ने कहा, कोई गया जरूर है, लेकिन वह स्त्री थी या पुरुष, यह बताना मुश्किल है। जब मेरे भीतर का पुरुष जागा हुआ था, तब मुझे स्त्री दिखाई पड़ती थी। न भी देखो, तो दिखाई पड़ती थी। बचना भी चाहो, तो भी दिखाई पड़ती थी। आंखें कितनी ही और कहीं मोड़ो, वे आंखें स्त्री को ही देखती थीं। जब से मेरा पुरुष विदा हो गया, तब से बहुत ख्याल करूं तो पता चलता है कौन स्त्री है, कौन पुरुष है। कोई निकला जरूर, लेकिन कौन था, यह कहना मुश्किल है। तुम पहले क्यों न आए? कह गए होते कि यहां से कोई निकले थोड़ा ध्यान रखना, तो मैं ध्यान रख सकता था। और यह बताना तो और भी मुश्किल है कि जो निकला है वह नंगा था या वस्त्र पहने हुए था। क्योंकि जब तक अपने नंगेपन को छिपाने की इच्छा थी, तब तक दूसरे के नंगेपन को देखने की भी बड़ी इच्छा थी। लेकिन अब कुछ देखने की इच्छा नहीं रह गई है। इसलिए ख्याल में नहीं आता कि कौन क्या पहने हुए है।
दूसरे में हमें वही दिखाई पड़ता है, जो हममें होता है। दूसरे में हमें
वह नहीं दिखाई पड़ता, जो हममें न हो। बहुत मुश्किल है! हर दूसरा आदमी दर्पण की तरह काम करता है, उसमें हम दिखाई पड़ते हैं।
बुद्ध कहने लगे, अब तो मुझे याद नहीं आता, क्योंकि किसी को नंगा देखने
की कोई कामना नहीं है। इसलिए पता नहीं कि वह कपड़े पहने थी या नहीं पहने थी। लेकिन तुम उसकी चिंता में क्यों पड़े हो?
उन्होंने कहा कि हम चिंता न करें? हम उसे लाए थे आमोद-प्रमोद के लिए, आनंद के लिए। और वह भाग गई है। हम उसे खोज रहे हैं।
बुद्ध ने कहा, तुम जाओ और उसे खोजो। भगवान करे लेकिन किसी दिन तुम्हें
यह ख्याल आ जाए कि इतनी खूबसूरत और शांत रात में अगर तुम किसी और को न खोज कर अपने को खोजते, तो शायद आनंद के ज्यादा निकट हो सकते थे। लेकिन तुम जाओ, तुम खोजो जिसे तुम्हें खोजना है। मैंने भी बहुत दिन तक दूसरों को खोजा, लेकिन दूसरों को खोज कर मैंने कुछ भी न पाया। और जब से अपने को खोजा है, तब से वह सब पा लिया है जिसे पाने की कोई भी कामना हो सकती है।
यह आदमी, यह बुद्ध ब्रह्मचर्य में रहा होगा। लेकिन चादर पुरुष हो जाए
तो ब्रह्मचर्य नहीं है। और इस देश का दुर्भाग्य कि दमन के कारण इस देश का सारा व्यक्तित्व कुरूप, विकृत, परवर्टेड हो गया है। एक-एक आदमी भीतर उलटा है, बाहर उलटा है। भीतर आत्मा शीर्षासन कर रही है। भीतर हम सब सिर के बल खड़े हुए हैं। जो नहीं है भीतर, वह हम बाहर दिखला रहे हैं। और दूसरे धोखे खा जाएं, इससे कोई बहुत हर्जा नहीं है। हम खुद ही धोखा खा जाते हैं। लंबे अर्से में हम खुद ही भूल जाते हैं कि हम यह क्या कर रहे हैं। दमन मनुष्य की आत्मा की असलियत को छिपा देता है और झूठा आवरण पैदा कर देता है। और फिर इस दमन में हम, जिंदगी भर जिसे दमन किया है, उससे ही लड़ कर गुजारते हैं। ब्रह्मचर्य की साधना करने वाला आदमी चौबीस घंटे सेक्स की ही चिंतना में व्यतीत करता है। उपवास करने वाला चौबीस घंटे भोजन करता है। यह तो आपने उपवास किया होगा तो पता होगा। उपवास करें, और चौबीस घंटे भोजन करना पड़ेगा। हां, भोजन मानसिक होगा, शारीरिक नहीं होगा। लेकिन शारीरिक भोजन का कुछ फायदा भी हो सकता है, मानसिक भोजन का सिवाय नुकसान के और कोई भी फायदा नहीं है। वह जिसने दिन भर खाना नहीं खाया है, वह दिन भर खाने की सोचेगा ही। स्वाभाविक है।
नहीं, उपवास का यह अर्थ नहीं है कि आदमी खाना न खाए। उपवास का अर्थ अनाहार नहीं है। अनाहार करने वाला दिन भर आहार करता है। उपवास का अर्थ दूसरा है। दमन नहीं है उपवास का अर्थ। लेकिन दमन ही उसका अर्थ बन गया है।
उपवास का अर्थ भोजन न करना नहीं है।
उपवास का अर्थ हैः आत्मा के निकट आवास।
और आत्मा के निकट कोई इतना पहुंच जाए कि उसे भोजन का ख्याल न आए, वह बात दूसरी है; कोई इतने भीतर उतर जाए कि बाहर का पता भी न चले कि शरीर भूखा

है, वह बात दूसरी है; कोई इतने गहरे में चला जाए कि शरीर को प्यास लगी है कि भूख लगी है, इसकी खबर न पहुंचती हो, यह बात दूसरी है। लेकिन कोई, भोजन नहीं खाऊंगा--ऐसा संकल्प करके बैठ जाए, तो दिन भर उसे भोजन करना पड़ता है; वह उपवास नहीं है।
दमन धोखा पैदा करता है। दमन, वह जो असलियत है उपलब्धि की, वह जो अनुभूति की, वह जो सत्य है, उसकी तरफ बिना ले जाए, बाहर परिधि पर ही संघर्ष करके जबरदस्ती कुछ पैदा करने की कोशिश करता है। और यह कोशिश बहुत महंगी पड़ जाती है।
हिंदुस्तान में ब्रह्मचर्य की बात चल रही है तीन हजार वर्ष से। और इस बात को कहने में मुझे जरा भी अतिशयोक्ति नहीं मालूम पड़ती कि आज इस पृथ्वी पर हमसे ज्यादा कामुक चित्त किसी समाज का नहीं है। नहीं होगा। नहीं हो सकता है। क्योंकि जिससे हम लड़े हैं वही हमारे भीतर घाव की तरह पैदा हो गया है। चौबीस घंटे उसी से लड़ रहे हैं। छोटे से बच्चे से लेकर मरते हुए बूढ़े तक सेक्स की लड़ाई चल रही है।
कोरिया में दो फकीर थे, मैंने उनके जीवन में पढ़ा। दो भिक्षु एक दिन सांझ अपने आश्रम वापस लौटते हैं। एक बूढ़ा भिक्षु है, एक युवा भिक्षु है। आश्रम के पहले ही एक छोटी सी पहाड़ी नदी है। सांझ हो गई है, सूरज ढलता है। एक युवती खड़ी है उस पहाड़ी नदी के किनारे। उसे भी नदी पार होना है। लेकिन डरती है, अनजान है शायद नदी, परिचित नहीं है, पता नहीं कितनी गहरी हो! भयभीत है। तो वह बूढ़ा साधु आगे आया है। उसको भी समझ में पड़ गया कि वह स्त्री पार होने के लिए चिंतित है, शायद कोई सहारा मांगती है। उसका भी मन हुआ कि हाथ से सहारा दे दूं, नदी पार करवा दूं। लेकिन हाथ का सहारा देने का ख्याल भर-- वर्षों की दबी हुई वासना एकदम खड़ी हो गई। वह हाथ को छूने की कल्पना ही-- भीतर जैसे नस-नस में, रग-रग में कोई बिजली दौड़ गई हो। तीस वर्ष से स्त्री को नहीं छुआ था। अभी छुआ नहीं था, अभी भी छुआ नहीं था। अभी सिर्फ सोचा था कि हाथ का सहारा दे दूं। लेकिन सारे प्राण कंप गए हैं। एक बुखार सारे व्यक्तित्व को घेर लिया। अपने मन को डराया, कहा कि मैंने कैसी गंदी बात सोची! कैसे पाप की बात सोची! मुझे क्या मतलब है? कोई नदी पार हो या न हो, मुझे क्या प्रयोजन है? मैं अपना जीवन क्यों बिगाडूं? अपनी साधना क्यों बिगाडूं?
बड़ी कीमती साधना होगी, जो एक लड़की का हाथ छूने से बिगड़ जाती! बड़ी बहुमूल्य साधना रही होगी! और ऐसी ही बहुमूल्य साधना के सहारे लोग मोक्ष तक पहुंचना चाहते हैं! ऐसी ही कीमती, मजबूत साधना के पुल पर चढ़ कर परमात्मा की यात्रा करना चाहते हैं!
आंख बंद कर ली उसने, क्योंकि वह स्त्री दिखाई पड़ती थी। और वह बहुत जोर
से दिखाई पड़ती थी, क्योंकि मन जाग गया था, सोई हुई वासना जाग गई थी। आंख बंद करके वह नदी उतरने लगा।
अब यह आपको पता होगा, जिस चीज से आंख बंद कर ली जाए, वह उतनी सुंदर कभी नहीं होती आंख खुले में, जितनी आंख बंद करने पर हो जाती है।
आंख बंद हुई, और वह स्त्री अप्सरा हो गई!
अप्सराएं इसी तरह पैदा होती हैं--बंद आंख से पैदा हो जाती हैं। दुनिया में स्त्रियां हैं, आंख बंद करो कि अप्सराएं पैदा हुईं। अप्सराएं कहीं भी नहीं हैं; लेकिन आंख बंद से स्त्री अप्सरा हो जाती है! एकदम कविता पैदा हो जाती है; फूल खिल जाते हैं; चांदनी फैल जाती है। एक ऐसा सौंदर्य आ जाता है जो स्त्री में कहीं भी नहीं है, जो सिर्फ आदमी की कामवासना के सपने में होता है। आंख बंद करते ही सपना शुरू हो जाता है।
अब वह असली स्त्री को नहीं देख रहा है। अब एक ड्रीम, अब एक सपना, और वह स्त्री उसे बुला रही है। उसका मन कभी कहता है कि चलूं, यह तो बड़ी बुरी बात है कि किसी असहाय स्त्री को सहारा न दूं। फिर तत्काल उसका दूसरा मन कहता है कि यह सब बेईमानी है, अपने को धोखा देने की तरकीब कर रहे हो। यह सेवा वगैरह नहीं है, तुम स्त्री को छूना चाहते हो! बड़ी मुश्किल है उसकी। साधुओं की बड़ी मुश्किल होती है। खींच-तान है भीतर, तनाव है भीतर। सारा प्राण पीछे लौट जाना चाहता है, और वह दमन करने वाला मन आगे चला जाना चाहता है। उस नदी

के छोटे से घाट पर वह आदमी दो हिस्सों में बंट गया है; एक हिस्सा आगे जा रहा है, एक हिस्सा पीछे जा रहा है। उसकी अशांति, उसका टेंशन, उसकी तकलीफ हम समझ सकते हैं। यही अशांति आदमी को पागल कर देगी।
आधा हिस्सा इस तरफ जा रहा है, आधा हिस्सा उस तरफ जा रहा है। किसी तरह खींच-तान कर उसने अपने को उस पार कर लिया है। आंखें खुल कर देखना चाहती हैं, लेकिन वह बहुत डरा हुआ है। वह भगवान का नाम लेता है, जोर-जोर से भगवान का--नमो बुद्धाय! नमो बुद्धाय!
भगवान का नाम आदमी जब भी जोर-जोर से ले, तब समझ लेना कि भीतर कुछ गड़बड़ है। उसको दबाने के लिए आदमी जोर-जोर से नाम लेता है। आदमी को ठंड लग रही हो नदी में नहाते वक्त, वह कहता है, सीता-राम, सीता-राम! वह ठंड जो लग रही है। बेचारे सीता-राम को क्यों तकलीफ दे रहे हो? उस ठंड को भुलाने की कोशिश कर रहे हो! अंधेरी गली में आदमी जाता है और कहता है, अल्लाह ईश्वर तेरे नाम! वह अंधेरे की घबड़ाहट को भुलाना चाह रहे हो।
जो आदमी परमात्मा के निकट जाता है, वह चिल्ल-पों नहीं करता भगवान के नाम की; वह चुप हो जाता है। ये जितने चिल्ल-पों और शोरगुल मचाने वाले लोग हैं, समझ लेना कि भीतर कुछ और चल रहा है। भीतर काम चल रहा है, और ऊपर राम का नाम चल रहा है।
वह भीतर औरत खींच रही है और वह किसी तरह भगवान का सहारा लेकर आगे बढ़ा
जा रहा है--कि कहीं ऐसा न हो कि औरत मजबूत हो जाए और खींच ही ले। उस स्त्री को बेचारी को पता भी नहीं है कि साधु किस मुसीबत में पड़ गया है। वह अपने रास्ते पर खड़ी है।
तभी उस साधु को ख्याल आया कि पीछे उसका जवान साधु भी आ रहा है। लौट कर उसने देखा कि उसको सचेत कर दे कि वह भी कहीं इसी दया करने की भूल में न पड़ जाए जिसमें मैं पड़ गया हूं। लेकिन लौट कर देखा तो भूल तो हो चुकी है। वह जवान आदमी उस औरत को कंधे पर लिए नदी पार कर रहा है। आग लग गई उस बूढ़े साधु को! न मालूम कैसा-कैसा मन होने लगा। कई बार होने लगा कि मैं उसकी जगह कंधा लगाए होता! फिर झिड़का उसने कि यह क्या पागलपन की बात, मैं और उस औरत को कंधे पर ले सकता हूं? तीस साल की साधना नष्ट करूंगा? गंदगी का ढेर है औरत का शरीर, तो उसको कंधे पर लूंगा? नरक का द्वार है यह औरत, इसको कंधे पर लूंगा? लेकिन वह दूसरा युवक लिए चला आ रहा है। आग जल गई कि आज जाकर गुरु को कहूंगा कि यह युवक भ्रष्ट हो गया, पतित हो गया; इसे निकालो आश्रम के बाहर! फिर उस युवक ने आकर उस युवती को किनारे पर छोड़ दिया और फिर वह चल पड़ा। फिर वे दोनों चलते रहे, मील भर तक बूढ़े ने कोई बात न की। जब वे आश्रम के द्वार पर प्रविष्ट हो रहे थे तो उस बूढ़े ने सीढ़ी पर खड़े होकर कहा कि याद रखो, मैं जाकर गुरु को कहूंगा! तुम पतित हो चुके हो! तुमने उस स्त्री को कंधे पर क्यों उठाया?
वह आदमी एकदम से चौंका। उस युवक ने कहा, स्त्री? उसको मैंने उठाया था
और छोड़ भी आया। लेकिन ऐसा मालूम पड़ता है कि आप उसे अभी भी कंधे पर लिए हुए हैं। उस युवक ने कहा, सर, यू आर स्टिल कैरीइंग हर ऑन योर शोल्डर! आप अभी भी ढो रहे हैं उसे कंधे पर! मैं तो उसे उतार भी आया। और आपने तो उसे कभी कंधे पर लिया भी नहीं था; आप अभी तक उसे क्यों ढो रहे हैं? मैं तो दो घंटे से सोचता था आप किसी ध्यान में लीन हैं। मुझे यह खबर भी न थी कि आप वही ध्यान कर रहे हैं--वही नदी का किनारा, वही स्त्री को नदी का पार करना।
यह तो मैंने कहानी सुनी थी। अभी ऐसी कहानी ठीक मेरे साथ हो गई दिल्ली में, वह आपने अखबार में जरूर पढ़ ली होगी। एक महिला आई और मेरे साथ ठहर गई। उसने मुझसे पूछा कि मैं यहां ठहर जाऊं आपके पास? मैंने कहा, बिल्कुल ठहर जाओ।
मुझे पता नहीं था कि मनुभाई पटेल को बड़ी तकलीफ हो जाएगी इस बात से। अगर मुझे पता होता तो संसद-सदस्य को मैं तकलीफ नहीं देता। मैं किसी को तकलीफ नहीं देना चाहता। कहता कि देवी, तुम्हारे ठहरने से मुझे तकलीफ नहीं, लेकिन मनु भाई पटेल को, बड़ौदा वालों को, उनको तकलीफ हो जाएगी। और किसी को तकलीफ देना अच्छा नहीं है। तो तुम्हें ठहरना ही हो तो जाओ, मनुभाई के कमरे में ठहर जाओ। यहां मेरे पास काहे के लिए ठहरती हो! लेकिन मुझे पता ही नहीं

था। पता होता तो यह भूल न होती। लेकिन यह भूल हो गई, अज्ञान में हो गई। वह आकर सो भी गई। लेकिन दूसरे दिन तकलीफ हुई। पता चला कि मनुभाई को, उनके मित्रों को बहुत कष्ट हो गया इस बात से कि वह मेरे कमरे में सो गई। मैं तो हैरान हुआ! वह कमरे में मेरे सोई, तकलीफ उनको हो गई!
लेकिन आदमी कंधे पर उन चीजों को ढोने लगता है, जिनसे भीतर कोई लड़ाई जारी रही हो। पता नहीं चलता, ख्याल में नहीं आता, पता ही नहीं चलता कि यह सब भीतर क्या हो रहा है। फिर इस बात को हुए दो महीने हो गए। वह मनुभाई मुझे मिलें तो उनसे कहूं--सर, यू आर स्टिल कैरीइंग हर ऑन योर शोल्डर? अभी भी ढो रहे हैं उस औरत को? लेकिन दो महीने हो गए, अब उनको अखबारों में, प्रेस कांफ्रेंस बुला कर खबर देने का मौका आया!
मैंने उनसे वहीं दिल्ली में कहा था कि मनुभाई, तकलीफ होगी। पीछे यह बात चलेगी, यह मिटने वाली नहीं है। तो मैं ही इसकी बात कर लूं सबके सामने। तो वहां कहा कि नहीं, क्या बात करनी है! कुछ हर्जा नहीं है; जो हो गया,
हो गया।
लेकिन मैं जानता था कि बात तो उठेगी ही, करनी ही पड़ेगी। फिर वे संसद-सदस्य हैं। संसद-सदस्यों को मुझ जैसे फकीरों के आचरण का ध्यान रखना चाहिए, नहीं तो मुल्क का आचरण बिगाड़ देंगे हम जैसे लोग। और ऐसे अच्छे संसद-सदस्य हैं, इसीलिए तो मुल्क का आचरण इतना अच्छा है, नहीं तो कभी का बिगड़ जाता। धन्यभाग हैं हमारे, मुल्क का आचरण कितना अच्छा है, अच्छे संसद-सदस्यों के कारण! जो पता लगाते हैं कि किसके कमरे में कौन सो रहा है! इसका हिसाब रखते हैं! ये लोक-सेवक हैं! लोक-सेवक होना चाहिए। मैं तो, जैसे ही मुझे खबर मिली, मैंने कहा कि इस बार इलेक्शन के वक्त अगर मुझे वक्त मिला तो जाऊंगा बड़ौदा में, लोगों से कहूंगा कि मनुभाई को ही वोट देना! इस तरह के लोगों की वजह से ही देश का चरित्र ऊंचा है, नहीं तो सब खराब हो जाएगा।
लेकिन यह दिमाग, यह दिमाग कहां से पैदा होता है? यह दिमाग कहां से आता है? यह भीतर क्या छिपा हुआ है?
वह भीतर है दमन की लंबी परंपरा। यह एक आदमी का सवाल नहीं है। यह हमारी पूरी जाति संस्कार का सवाल है। यह कोई मनुभाई का सवाल नहीं है। वे तो प्रतिनिधि हैं हमारे और आपके। हमारी सब बीमारियों के प्रतिनिधि हैं हमारे सब प्रतिनिधि--वह जो हमारे भीतर छिपा है।
हमारे भीतर क्या छिपा है?
हमने एक अजीब सप्रेशन की धारा में अपने को जोड़ रखा है! दबा रहे हैं सब!
वह दबाया हुआ घाव हो जाता है। वह घाव पीड़ा देता है। उस घाव की वजह से हमें बाहर वही-वही दिखाई पड़ने लगता है जो भीतर है। सारा जगत फिर एक दर्पण बन जाता है।
नहीं! यह सप्रेशन की लंबी धारा, यह दमन की लंबी यात्रा व्यक्तित्व को नष्ट करती है। इसने जीवन के सारे स्रोतों को पाय.जन से भर दिया, जहर से भर दिया। जीवन के सारे स्रोत विकृत और कुरूप हो गए हैं।
इसलिए तीसरा सूत्र आज आपसे कहना चाहता हूंः दमन से बचना, अगर जीवन को
और सत्य को जानना हो! और कभी प्रभु के, परमात्मा के द्वार पर दस्तक देनी हो, तो दमन वाला चित्त वहां तक कभी नहीं पहुंचता। वह वहीं रुक जाता है, जहां दमन करता है। जिसका दमन करता है, वहीं ठहर जाता है। और उसको वहीं ठहरना पड़ता है, क्योंकि जरा ही हटा कि दमन उखड़ जाएगा और जिसको दबाया है वह प्रकट होना शुरू हो जाएगा।
अगर एक आदमी की छाती पर आप सवार हो गए, तो फिर आप उसको छोड़ कर नहीं जा सकते, क्योंकि छोड़ कर आप गए तो वह फिर निकल कर आपके ऊपर हमला करेगा। तो अगर किसी आदमी की छाती पर आप सवार हो गए, तो आप समझना कि जितना वह आपसे बंध गया, उससे भी ज्यादा आप उससे बंध गए हैं! क्योंकि आप छोड़ कर नहीं हट सकते।
तो मनुष्य जिन चीजों को दबा लेता है, उन्हीं के साथ बंध जाता है। उनको छोड़ कर हट नहीं सकता, और कहीं नहीं जा सकता। इसलिए दमन से अत्यंत साधक को सावधान रहना है। दमन पैदा करेगा--पागलपन, विक्षिप्तता, इनसेनिटी।
जितने मनोचिकित्सक हैं, उनसे पूछें, वे क्या कहते हैं। वे यह कहते हैं
कि सारी दुनिया पागल हुई जा रही है दमन के कारण। पागलखाने में सौ आदमी बंद

हैं, उनमें अट्ठानबे आदमी दमन के कारण बंद हैं! जिन्होंने भी जोर से दबा लिया है, उन्होंने एक विस्फोट की आग को भीतर रख लिया है। वह विस्फोट फूटना चाहता है, वह सारे व्यक्तित्व को किसी दिन तोड़ देता है, किसी दिन खंड-खंड बिखेर देता है सारे मकान को। आदमी बिखर कर टूट कर खड़ा हो जाता है। इसलिए जितना आदमी सभ्य होता चला जा रहा है, उतना ही पागल होता जा रहा है, क्योंकि सभ्यता का सूत्र दमन है।
नहीं, स्वभाव को अगर जानना है, तो दमन से नहीं जाना जा सकता है।
लेकिन आप कहेंगे, अगर हम दमन नहीं करेंगे तब तो आदमी पशु हो जाएगा। तब
तो क्रोध आए तो क्रोध करना चाहिए--आप यह कहते हैं? वासना आए तो वासना भोगनी चाहिए--आप यह कहते हैं? आप लोगों को वासना में डूब जाने के लिए कहते हैं? बिल्कुल नहीं, जरा भी नहीं कहता हूं। दमन से बचने को कह रहा हूं, अभी भोग करने को नहीं कह रहा हूं। अभी एक सूत्र समझ लें, कल हम दूसरे सूत्र की बात करेंगे।
दमन से बचने का अर्थ भोग में कूद जाना नहीं है। अनिवार्यरूपेण वही एक दूसरा आल्टरनेटिव नहीं है, और विकल्प भी हैं। उन विकल्प की हम बात करेंगे। इसलिए जल्दी से यह नतीजा लेकर घर मत लौट जाना। मेरी बातों में जल्दी नतीजा नहीं लेना चाहिए, नहीं तो बड़ी मुश्किल हो जाती है।
दमन नहीं! खुद के व्यक्तित्व से संघर्ष नहीं! खुद के व्यक्तित्व से द्वंद्व नहीं!
क्योंकि खुद के व्यक्तित्व से द्वंद्व का अर्थ है, जैसे मैं अपने दोनों हाथों को लड़ाने लगूं। कौन जीतेगा, कौन हारेगा? दोनों हाथ मेरे हैं! दोनों हाथों के पीछे लड़ने वाली शक्ति मेरी है! दोनों हाथों के पीछे मैं हूं। कौन जीतेगा?
कोई नहीं जीत सकता। लेकिन दोनों हाथों की लड़ाई में जीतेगा कोई भी नहीं, क्योंकि जीतने वाले दो हैं ही नहीं। लेकिन एक अदभुत घटना घट जाएगी। जीतेगा तो कोई नहीं--न बायां, न दायां--लेकिन मैं हार जाऊंगा दोनों को लड़ाने में; क्योंकि मेरी शक्ति दोनों के साथ नष्ट होगी। और मैं हार जाऊंगा शक्ति के क्षीण होने से।
जो भी दमन कर रहा है, वह किसका दमन कर रहा है? अपना ही! अपने ही चित्त
के खंडों को दबा रहा है। किससे दबा रहा है? खुद के ही चित्त के दूसरे खंडों से दबा रहा है। चित्त के एक खंड को चित्त के दूसरे खंड से दबा रहा है। खुद को ही खुद से लड़ा रहा है! ऐसा आदमी अगर पागल हो जाए अंततः तो आश्चर्य क्या है!
वह तो आदमी पागल नहीं हो पाता, क्योंकि दमन करने वालों की बात पूरी तरह से कोई भी नहीं मानता है। नहीं तो सारी मनुष्यता पागल हो जाए। वह दमन करने वालों की बात पूरी तरह कोई नहीं मानता। और न मानने की वजह से थोड़ा सा रास्ता बचा रहता है कि आदमी बच जाता है।
हां, न मानने की वजह से, ऊपर से दिखलाता है कि मानता हूं, भीतर से पूरा मानता नहीं, इसलिए पाखंड और हिपोक्रेसी पैदा होती है। हिपोक्रेसी दमन की सगी बहन है। वह जो पाखंड है, वह दमन का चचेरा भाई है। दमन चलेगा, तो पाखंड पैदा होगा।
अगर पाखंड पैदा न होगा तो पागलपन पैदा होगा। पागलपन से बचना है तो पाखंडी हो जाना पड़ेगा। दुनिया को दिखाना पड़ेगा कि ब्रह्मचर्य, और पीछे से वासना के रास्ते खोजने पड़ेंगे। दुनिया को दिखाना पड़ेगा कि मुझे तो मिट्टी है धन, और भीतर गुप्त मार्गों से तिजोरियां बंद करनी पड़ेंगी। वह भीतर से चलेगा। फिर पाखंड होगा, फिर एक झूठ। लेकिन यह पाखंड बचा रहा है आदमी को, नहीं तो आदमी पागल हो जाए। अगर सीधा-सादा आदमी दमन के चक्कर में पड़ जाए तो पागल हो जाता है।
ये साधु-संन्यासी बहुत बड़े अंश में पागल होते देखे जाते हैं, उसका कारण आप समझते हैं?
लोग समझते हैं कि भगवान का उन्माद छा गया! भगवान के लिए दीवाने हो गए! भगवान का कोई उन्माद नहीं होता है। सब उन्माद भीतर की रुग्णता से पैदा होता है। लेकिन वह भीतर अगर बहुत दमन हो तो रोग पैदा हो जाता है,

उन्माद पैदा हो जाता है, पागलपन पैदा हो जाता है। लेकिन उसको हम कहते हैं-- हर्षोन्माद, एक्सटैसी! एक्सटैसी वगैरह नहीं है, मैडनेस है, इनसेनिटी है। या तो आदमी पूरा दमन करे तो पागल होगा। और या फिर पाखंड का रास्ता निकाल ले तो बच जाएगा, लेकिन पाखंडी हो जाएगा। और पाखंडी होना पागल होने से अच्छा नहीं है। पागल की फिर भी एक सिंसिआरिटी है, पागल की फिर भी एक निष्ठा है; पाखंडी की तो कोई निष्ठा नहीं, कोई नैतिकता नहीं, कोई ईमानदारी नहीं।
मगर दमन यही दो विकल्प पैदा करता है। आप अपने से लड़े, और आप गलत रास्ते
पर गए।
अपने से नहीं लड़ना है। अपने से लड़ना अधार्मिक है। दमन मात्र अधार्मिक है। दमन मात्र मनुष्य को जितना नुकसान पहुंचाया है, उतना दुनिया में किसी और शत्रु ने कभी नहीं पहुंचाया। उस दिन ही मनुष्य पूरी तरह स्वस्थ होता है, जिस दिन सारे दमन से मुक्त होता है; जिस दिन उसके भीतर कोई कांफ्लिक्ट नहीं, कोई द्वंद्व नहीं। जिस दिन भीतर द्वंद्व नहीं होता है, उसी दिन उस एक का दर्शन होता है, जो भीतर है।
अगर ठीक से समझें, तो दमन मनुष्य को विभक्त करता है, डिवाइड करता है।
और दमन जिस व्यक्ति के भीतर होगा, वह फिर इंडिविजुअल नहीं रह जाएगा, वह व्यक्ति नहीं रह जाएगा; वह विभक्त हो जाएगा, उसके कई टुकड़े हो जाएंगे; वह स्कीजोफ्रेनिक हो जाएगा। दमन न होगा व्यक्ति में तो योग की स्थिति उपलब्ध होगी।
योग का अर्थ है--जोड़; योग का अर्थ है--इंटीग्रेशन; योग का अर्थ है--एक। लेकिन एक कौन हो सकता है? एक व्यक्तित्व किसका हो सकता है?
उसका जो लड़ नहीं रहा है; उसका जो अपने को खंड-खंड में नहीं तोड़ रहा है;
जो अपने भीतर नहीं कह रहा है--यह बुरा है, यह अच्छा है; इसको बचाऊंगा, इसको छोडूंगा। जिसने भी अपने भीतर बुरे और अच्छे का भेद किया, वह दमन में पड़ जाएगा।
दमन से बचने का सूत्र हैः अपने भीतर जो भी है, उसकी पूर्ण स्वीकृति, टोटल एक्सेप्टबिलिटी। जो भी है--सेक्स है, लोभ है, क्रोध है, मान है, अहंकार है--जो भी है भीतर, उसकी सर्वांगीण स्वीकृति प्राथमिक बात है। तो व्यक्ति आत्मज्ञान की तरफ विकसित होगा। नहीं तो नहीं विकसित होगा।
अगर उसने अस्वीकार किया कि इस हिस्से को मैं अस्वीकार करता हूं--उसने कहा कि मैं लोभ को फेंक दूंगा; उसने कहा कि मैं क्रोध को फेंक दूंगा--बस फिर वह नहीं कभी भी शांत हो पाएगा; इस फेंकने में ही अशांत हो जाएगा।
और इसीलिए तो संन्यासी जितने क्रोधी देखे जाते हैं, उतने साधारण लोग क्रोधी नहीं होते! संन्यासी का क्रोध बहुत अदभुत है। दुर्वासा की कथाएं तो हम जानते हैं। वे परम संन्यासी, परम ऋषि थे। इतना क्रोध क्रोध छोड़ने वाले लोगों में इकट्ठा हो जाता है! इतना अहंकार कि दो संन्यासी एक-दूसरे को मिल नहीं सकते; क्योंकि कौन किसको पहले नमस्कार करेगा! दो संन्यासी एक साथ बैठ नहीं सकते; क्योंकि किसका तखत ऊंचा होगा और किसका नीचा होगा! ये संन्यासी हैं कि पागल हैं? अभी तखत की ऊंचाई-नीचाई नापने में लगे हैं, परमात्मा की ऊंचाई-नीचाई का इन्हें पता भी क्या होगा!
मैं कलकत्ते में एक सर्व-धर्म-सम्मेलन में बोलने गया। वहां कई तरह के संन्यासी कई धर्मों के उन्होंने आमंत्रित किए थे। उनको क्या पता बेचारों को कि सब संन्यासियों को एक मंच पर नहीं बिठाला जा सकता। कोई उसमें शंकराचार्य है, वे कहते हैं, हम अपने सिंहासन पर बैठेंगे। और शंकराचार्य सिंहासन पर बैठें तो दूसरा आदमी कैसे नीचे बैठ सकता है! किसका तखत ऊंचा होगा? संयोजकों ने मुझे आकर कहा कि सबकी खबरें आ रही हैं कि हमारे बैठने का इंतजाम क्या है?
बच्चों जैसी बात मालूम पड़ती है। छोटे-छोटे बच्चे कुर्सी पर खड़े हो जाते हैं और अपने बाप से कहते हैं, तुमसे ऊंचे हैं हम! इससे ज्यादा बुद्धि नहीं मालूम पड़ती तखत ऊंचा-नीचा रखने वालों में। इससे ज्यादा ऊंची बुद्धि है? तखत से ऊंचे हो जाएंगे आप? तो हद हो गई, आदमी का ऊंचा होना बहुत आसान हो गया!

लेकिन दबा रहे हैं अहंकार को, तो अहंकार दूसरे रास्तों से खोज कर रहा
है निकलने के लिए। इधर अहंकार को दबा रहे हैं, इधर कह रहे हैं कि मैं कुछ भी नहीं हूं! हे परमात्मा, मैं तो तेरी शरण में हूं! इधर यह कह रहे हैं, उधर वह अहंकार कह रहा है कि अच्छा, ठीक है बेटे! इधर तुम शरण में जाओ, हम दूसरा रास्ता खोजते हैं। हम कहते हैं कि सोने का सिंहासन चाहिए! क्योंकि हमसे ज्यादा भगवान की शरण में और कोई भी नहीं गया है, तो हमको सोने का सिंहासन चाहिए!
इधर कि मैं कुछ भी नहीं हूं; आदमी तो कुछ भी नहीं है, सब संसार माया है!
और उधर? उधर अगर जगतगुरु न लिखो आगे, तो नाराज हो जाती है तबीयत कि मुझे जगतगुरु नहीं लिखा! और मजा यह है कि जगत से पूछे बिना ही गुरु हो गए हैं? जगत से भी तो पूछ लिया होता, यह जगत बहुत बड़ा है!
एक गांव में मैं गया था। वहां भी एक जगतगुरु थे। जगतगुरुओं की कोई कमी है! जिसको भी ख्याल पैदा हो जाए, वह जगतगुरु हो सकता है। इस वक्त सबसे सस्ता काम यह है। गांव में जगतगुरु थे। मैंने कहा, इतना छोटा सा गांव, जगतगुरु कहां से ले आए? उन्होंने कहा, वे यहीं रहते हैं सदा। मैंने कहा, जगत से पूछ लिया है उन्होंने? उन्होंने कहा, जगत से तो नहीं पूछा। लेकिन वे बहुत होशियार आदमी हैं। उनका एक शिष्य है। मैंने कहा, और कितने हैं? उन्होंने कहा, बस एक ही है। लेकिन उसका नाम उन्होंने जगत रख लिया है। तो वे जगतगुरु हो गए हैं।
बिल्कुल ठीक बात है। अब और कोई कमी न रही--लीगली, कांस्टीट्यूशनली। अदालत में मुकदमा नहीं चला सकते हैं इस आदमी पर। यह जगतगुरु है। सारे जगतगुरु इसी तरह के हैं। किसी का एक शिष्य होगा, किसी के दस होंगे, इससे क्या फर्क पड़ता है। लेकिन उधर कहते हैं कि नहीं कुछ, आदमी तो माया है; असली तो ब्रह्म है, एक ही ब्रह्म है। और इधर जगतगुरु होने का भी रोग सवार रहता है! वह अहंकार, उधर से बचाओ, इधर से रास्ता खोजता है।
आदमी जिस-जिस को दबाएगा, वही-वही नये-नये मार्गों से प्रकट होगा। दमन करके कभी कोई किसी चीज से मुक्त नहीं होता। इसलिए दमन से बचना, दमन से सावधान रहना। दमन ही मनुष्य को तोड़ देने का सूत्र है। और अगर जुड़ना है और एक हो जाना है, तो दमन से बच जाना पहली शर्त है।
चौथे सूत्र में आपसे मैं बात करूंगा कि अगर दमन से बच जाएं तो फिर भोग एकदम निमंत्रण देगा कि आओ! अब तो क्रोध से बचना नहीं है, इसलिए आओ, क्रोध करो! अब तो सेक्स से बचना नहीं है, इसलिए आओ और कूद जाओ! अब तो लोभ से बचना नहीं है, इसलिए दौड़ो और रुपये इकट्ठे करो! जैसे ही दमन से बचेंगे, वैसे ही भोग निमंत्रण देगा कि आ जाओ। उस भोग के लिए क्या करना है, वह चौथे सूत्र में आपसे बात करूंगा।
मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

क्रांति सूत्र
चौथा प्रवचन

न भोग, न दमन--वरन जागरण

मेरे प्रिय आत्मन्!

तीन सूत्रों पर हमने बात की है जीवन-क्रांति की दिशा में।
पहला सूत्र थाः सिद्धांतों से, शास्त्रों से मुक्ति। क्योंकि जो किसी
भी तरह के मानसिक कारागृह में बंद है, वह जीवन की, सत्य की खोज की यात्रा नहीं कर सकता है। और वे लोग, जिनके हाथों में जंजीरें हैं, उतने बड़े गुलाम नहीं हैं, जितने वे लोग, जिनकी आत्मा पर विचारों की जंजीरें हैं; वादों, सिद्धांतों, संप्रदायों की जंजीरें हैं। आदमी की असली गुलामी मानसिक है। दूसरे दिन दूसरे सूत्र पर बात की हैः भीड़ की आंखों में अपने प्रतिबिंब से बचने की--पब्लिक ओपीनियन--वह दूसरी जंजीर है। आदमी जीवन भर यही देखता रहता है कि दूसरे मेरे संबंध में क्या सोचते हैं! और दूसरे मेरे संबंध में ठीक सोचें, इस भांति का अभिनय करता रहता है। ऐसा व्यक्ति अभिनेता ही रह जाता है। ऐसे व्यक्ति के जीवन में चरित्र जैसी कोई बात नहीं होती। ऐसा व्यक्ति बाहर के अभिनय में ही खो जाता है, भीतर की आत्मा से उसका कभी संबंध नहीं होता। दूसरा सूत्र थाः भीड़ से मुक्ति।
तीसरा सूत्र थाः दमन से मुक्ति।
वे जो अपने चित्त को दबाने में ही जीवन नष्ट कर देते हैं, जिस बात को दबाते हैं, उसी बात से बंधे रह जाते हैं। अगर उन्होंने धन से छूटने की कोशिश की, लोभ को दबाया, तो वे परम लोभी हो जाएंगे। अगर उन्होंने काम को, सेक्स को दबाया, तो कामुक हो जाएंगे। जिसको आदमी दबाता है, वही हो जाता है, यह कल तीसरे सूत्र की बात हुई।
आज चौथे सूत्र की बात करेंगे। इसके पहले कि हम चौथे सूत्र को समझें, दमन के संबंध में प्रास्ताविक रूप से कुछ समझ लेना जरूरी है।
मनुष्य को पता ही नहीं चलता जन्म के बाद कब दमन शुरू हो गया है! हमारी सारी शिक्षा, सारी संस्कृति, सारी सभ्यता दमनवादी है। जगह-जगह मनुष्य पर रोक है। क्रोध! तो क्रोध मत करो! लेकिन कोई नहीं समझाता कि अगर क्रोध नहीं किया, तो क्रोध भीतर सरक जाएगा, उसका क्या होगा? अगर क्रोध को पी गए, तो वह खून में मिल जाएगा, हड्डी तक उतर जाएगा, उस क्रोध का क्या होगा?
क्रोध को दबा लेने से क्रोध का अंत नहीं होता। दबा हुआ क्रोध भीतर प्राणों में प्रविष्ट हो जाता है। निकला हुआ क्रोध शायद थोड़ी देर का होता, दबा हुआ क्रोध जीवन भर के लिए साथी हो जाता है। क्रोध को दबाया कि पूरा व्यक्तित्व क्रोध से भर जाता है। लेकिन बचपन से ही सिखाया जाता हैः क्रोध--क्रोध मत करना! ऐसी ही सारी बातें सिखाई जाती हैं। लेकिन कोई भी क्रोध से मुक्त नहीं हो पाता।
एक पूर्णिमा की रात एक छोटे से गांव में एक बड़ी अदभुत घटना घट गई। कुछ जवान लड़कों ने शराबखाने में जाकर शराब पी ली। और जब वे शराब के नशे में मदमस्त हो गए और शराबघर से बाहर निकले, तो चांद की बरसती चांदनी में उन्हें ख्याल आया कि नदी पर जाएं और नौका-विहार करें।
रात बड़ी सुंदर और नशे से भरी हुई थी। वे गीत गाते हुए नदी के किनारे पहुंच गए। नावें वहां बंधी थीं। मछुए नाव बांध कर घर जा चुके थे। रात आधी हो गई थी। वे एक नाव में सवार हो गए। उन्होंने पतवार उठा ली और नाव खेना शुरू किया। फिर सुबह होने तक वे नाव को खेते रहे। सुबह की ठंडी हवाएं आईं, तब होश आया थोड़ा, किसी ने पूछा, कहां आ गए होंगे अब तक हम? आधी रात तक हमने यात्रा की है, न-मालूम कितनी दूर निकल आए होंगे। उतर कर कोई देख ले--किस दिशा में चल पड़े हैं, कहां पहुंच गए हैं? जो उतरा था, वह उतर कर हंसने लगा। और उसने कहा कि दोस्तो, तुम भी उतर आओ! हम कहीं भी नहीं पहुंचे हैं। हम वहीं खड़े हैं, जहां रात नाव खड़ी थी।

वे बहुत हैरान हुए। रात भर उन्होंने पतवार चलाई थी और वहीं खड़े थे! उतर कर देखा तो पता चला, नाव की जंजीरें किनारे से बंधी रह गई थीं, उन्हें वे खोलना भूल गए थे!
जीवन भी, पूरे जीवन नाव खेने पर, पूरे जीवन पतवार खेने पर, कहीं पहुंचता हुआ मालूम नहीं पड़ता है। मरते समय आदमी वहीं पाता है, जहां वह जन्मा था! ठीक उसी किनारे पर, जहां आंख खोली थीं, वहीं आंख बंद करते समय आदमी पाता है कि वहीं खड़ा हूं। और तब बड़ी हैरानी होती है कि जीवन भर जो दौड़-धूप की थी उसका क्या हुआ? वह जो श्रम किया था कहीं पहुंचने को, वह जो यात्रा की थी, वह सब निष्फल गई? मृत्यु के क्षण में आदमी वहीं पाता है, जहां जन्म के क्षण में था! तब सारा जीवन एक सपना मालूम पड़ने लगता है। नाव कहीं बंधी रह गई किसी किनारे से!
हां, कुछ लोग--कुछ सौभाग्यशाली--मरते क्षण वहां पहुंच जाते हैं, जहां जन्म ने उन्हें नहीं बांधा। वहां जहां जीवन का आकाश है, वहां जहां जीवन का प्रकाश है, वहां जहां सत्य है, वहां जहां परमात्मा का मंदिर है--वहां पहुंच जाते हैं। लेकिन वे वे ही लोग हैं, जो किनारे से, खूंटे से जंजीर खोलने की याद रखते हैं।
इन चार दिनों में कुछ जंजीरों की मैंने बात की है। पहले दिन मैंने कहा
कि शास्त्रों-सिद्धांतों की जंजीर है बड़ी गहरी। और जो शास्त्रों- सिद्धांतों से बंधा रह जाता है, वह कभी जीवन के सागर में यात्रा नहीं कर पाता है।
जीवन का सागर है--अज्ञात; और सिद्धांत और शास्त्र सब हैं--ज्ञात।
ज्ञात से अज्ञात की तरफ जाने का कोई भी मार्ग नहीं है, सिवाय ज्ञात को छोड़ने के। जो भी हम जानते हैं वह जानते हैं और जो जीवन है वह अनजान है, अननोन है; वह परिचित नहीं है। तो जो हम जानते हैं, उसके द्वारा उसे नहीं पहचाना जा सकता जिसे हम नहीं जानते हैं। जो ज्ञात है, जो नोन है, उससे अननोन को, अज्ञात को जानने का कोई द्वार नहीं है, सिवाय इसके कि ज्ञात को छोड़ दिया जाए। ज्ञात को छोड़ते ही अज्ञात के द्वार खुल जाते हैं।
पहले दिन पहले सूत्र में मैंने यही कहाः छोड़ें हम शास्त्र को, छोड़ें शब्द को! क्योंकि सब शब्द उधार हैं--बारोड; बासे; मरे हुए। और सब शास्त्र पराए हैं--कोई कृष्ण का, कोई राम का, कोई बुद्ध का, कोई जीसस का, कोई मोहम्मद का। जो उन्होंने कहा है, वह उनके लिए सत्य रहा होगा। निश्चित ही, जो उन्होंने कहा है, उसे उन्होंने जाना होगा। लेकिन दूसरे का ज्ञान किसी और दूसरे का ज्ञान नहीं बनता है, नहीं बन सकता है। कृष्ण जो जानते हैं, जानते होंगे। हमारे पास कृष्ण का शब्द ही आता है, कृष्ण का सत्य नहीं।
मैंने सुना है, एक कवि समुद्र की यात्रा पर गया है। जब वह सुबह समुद्र
के तट पर जागा, इतनी सुंदर सुबह थी! इतना सुंदर प्रभात था! पक्षी गीत गाते थे वृक्षों पर। सूरज की किरणें नाचती थीं लहरों पर। लहरें उछलती थीं। हवाएं ठंडी थीं। फूलों की सुवास थी। वह नाचने लगा उस सुंदर प्रभात में। और फिर उसे याद आया कि उसकी प्रेयसी तो एक अस्पताल में बीमार पड़ी है। काश, वह भी आज यहां होती! लेकिन वह तो नहीं आ सकती। वह तो बिस्तर से बंधी है। उसके तो उठने की कोई संभावना नहीं।
तो उस कवि को सूझा कि फिर मैं यह करूं, समुद्र की इन ताजी हवाओं को, इन सूरज की नाचती किरणों को, इस संगीत को, इस सुवास को एक पेटी में बंद करके ले जाऊं। और अपनी प्रेयसी को कहूं--देख, कितनी सुंदर सुबह से एक टुकड़ा तेरे लिए ले आया हूं!
वह गांव गया और एक पेटी खरीद कर लाया। बहुत सुंदर पेटी थी। और उस पेटी में उसने समुद्र के किनारे खोल कर हवाएं भर लीं, सूरज की नाचती किरणें भर लीं, सुगंध भर ली। उस सुबह का एक टुकड़ा उस पेटी में बंद करके, ताला लगा कर सब रंध्र-रंध्र बंद कर दी, कि कहीं से वह सुबह बाहर न निकल जाए। और उस पेटी को अपने पत्र के साथ अपनी प्रेयसी के पास भेजा कि सुबह का सुंदर एक टुकड़ा, एक जिंदा टुकड़ा सागर के किनारे का तेरे पास भेजता हूं। नाच उठेगी तू! आनंद से भर जाएगी! ऐसी सुबह मैंने कभी देखी नहीं।

उस प्रेयसी के पास पत्र भी पहुंच गया, पेटी भी पहुंच गई। पेटी उसने खोल ली, लेकिन उसके भीतर तो कुछ भी न था--न सूरज की किरणें थीं, न हवाएं थीं, न कोई सुवास थी। वह पेटी तो बिल्कुल खाली थी, निहायत खाली थी, उसके भीतर तो कुछ भी न था। पेटी पहुंचाई जा सकती है, जिस सौंदर्य को सागर के किनारे जाना, उसे नहीं पहुंचाया जा सकता।
जो लोग सत्य के, जीवन के सागर के तट पर पहुंच जाते हैं, वे वहां क्या जानते हैं--कहना मुश्किल है। क्योंकि हमारा सूरज, जिस प्रकाश को वे जानते हैं, उसके सामने अंधकार है। पता नहीं वे जिस सुवास को जानते हैं, हमारे किसी फूल में वह सुवास नहीं है, उसकी दूर की गंध भी नहीं है। वे जिस आनंद को जानते हैं, हमारे सुखों में उस आनंद की एक किरण भी नहीं है। वे जिस जीवन को जानते हैं, हमारे शरीर में उस जीवन का हमें पता भी नहीं है। उनके मन को भी होता हैः भेज दें उनके लिए जो रास्ते पर पीछे भटक रहे हैं। थोड़ा सा टुकड़ा शब्दों की पेटियों में भर कर वे भेजते हैं--गीता में, कुरान में, बाइबिल में। हमारे पास पेटियां आ जाती हैं, शब्द आ जाते हैं; लेकिन जो भेजा था, वह पीछे छूट जाता है, वह हमारे पास नहीं आता है। फिर हम इन्हीं पेटियों को सिर पर ढोए हुए घूमते रहते हैं। कोई गीता को लेकर घूम रहा है, कोई कुरान को, कोई बाइबिल को। और चिल्ला रहा है कि सत्य मेरे पास है! मेरी किताब में है! सत्य किसी भी किताब में न है, न हो सकता है। सत्य किसी शब्द में न है, न
हो सकता है। सत्य तो वहां है, जहां सब शब्द क्षीण हो जाते हैं और गिर जाते हैं। जहां चित्त मौन हो जाता है, निर्विचार, वहां है सत्य। न वहां कोई शास्त्र जाता है, न कोई सिद्धांत जाते हैं।
इसलिए जो सिद्धांतों और शास्त्रों की खूंटियों से बंधे हैं, वे कभी जीवन के सागर के तट पर नहीं जा सकेंगे। यह मैंने पहले सूत्र में कहा।
दूसरे सूत्र में मैंने कहाः जो लोग भीड़ से बंधे हैं और भीड़ की आंखों में देखते रहते हैं कि लोग क्या कहते हैं, वे लोग असत्य हो जाते हैं।
क्योंकि भीड़ असत्य है। भीड़ से ज्यादा असत्य इस पृथ्वी पर और कुछ भी नहीं। सत्य जब भी अवतरित होता है, तब व्यक्ति के प्राणों पर अवतरित होता है। सत्य भीड़ के ऊपर अवतरित नहीं होता। सत्य को पकड़ने के लिए व्यक्ति का प्राण ही वीणा बनता है। वहीं से झंकृत होता है सत्य। भीड़ के पास कोई सत्य नहीं है। भीड़ के पास उधार बातें हैं, जो कि असत्य हो गई हैं। भीड़ के पास किताबें हैं, जो कि मर चुकी हैं। भीड़ के पास महात्माओं, तीर्थंकरों, अवतारों के नाम हैं, जो सिर्फ नाम हैं; जिनके पीछे अब कुछ भी नहीं बचा, सब राख हो गया है। भीड़ के पास परंपराएं हैं; भीड़ के पास याददाश्तें हैं; भीड़ के पास हजारों- लाखों साल की आदतें हैं; लेकिन भीड़ के पास वह चित्त नहीं, जो मुक्त होकर सत्य को जान लेता है। जब भी कोई उस चित्त को उपलब्ध करता है, तो अकेले में, व्यक्ति की तरह उस चित्त को उपलब्ध करना पड़ता है।
इसलिए जहां-जहां भीड़ है, जहां-जहां भीड़ का आग्रह है--हिंदुओं की भीड़, मुसलमानों की भीड़, ईसाइयों की भीड़, जैनियों की भीड़, बौद्धों की भीड़--सब भीड़ असत्य हैं। हिंदू भी, मुसलमान भी, ईसाई भी, जैन भी--और बीमारियों के कोई भी नाम हों, सब। भीड़ का कोई संबंध सत्य से नहीं है। लेकिन हम भीड़ को देख कर जीते हैं। हम देखते हैं कि भीड़ क्या कह रही है? भीड़ क्या मान रही है?
जो आदमी भीड़ को देख कर जीता है, वह अपने बाहर ही भटकता रह जाता है; क्योंकि भीड़ बाहर है। जिस आदमी को भीतर जाना है, उसे भीड़ से आंखें हटा लेनी पड़ती हैं। और अपनी तरफ, जहां वह अकेला है, उस तरफ आंखें ले जानी पड़ती हैं। लेकिन हम सब भीड़ से बंधे हैं; भीड़ की खूंटी से बंधे हैं।
मैंने सुना है कि एक सम्राट था। और उस सम्राट के दरबार में एक दिन एक आदमी आया और उस आदमी ने कहा कि महाराज, आपने सारी पृथ्वी जीत ली, लेकिन एक चीज की कमी है आपके पास।
उस सम्राट ने कहा, कमी? कौन सी है कमी, जल्दी बताओ! क्योंकि मैं तो बेचैन हुआ जाता हूं। मैं तो सोचता था, सब मैंने जीत लिया।
उस आदमी ने कहा, आपके पास देवताओं के वस्त्र नहीं हैं। मैं देवताओं के वस्त्र आपके लिए ला सकता हूं।
सम्राट ने कहा, देवताओं के वस्त्र तो कभी न देखे, न सुने! कैसे लाओगे?

उस आदमी ने कहा, लाना ऐसे तो बहुत मुश्किल है, क्योंकि पहले तो देवता बहुत सरल थे। और आजकल हिंदुस्तान के सब राजनीतिज्ञ मर कर स्वर्गीय हो गए हैं, वहां बड़ी बेईमानी, बहुत करप्शन सब तरह के शुरू हो गए हैं। हिंदुस्तान के राजनीतिज्ञ मर कर सब स्वर्गीय हो जाते हैं, नरक में तो कोई जाता नहीं। हालांकि कोई राजनीतिज्ञ स्वर्ग में नहीं जा सकता। और अगर राजनीतिज्ञ जिस दिन स्वर्ग में जाने लगेंगे, उस दिन स्वर्ग भले आदमियों के रहने योग्य जगह न रह जाएगी। लेकिन होते तो सभी स्वर्गीय हैं।
तो उसने कहा कि जब से ये सब पहुंचने लगे हैं वहां, बड़ी मुश्किल हो गई है, बहुत रिश्वत चल पड़ी है वहां। लाने भी पड़ेंगे अगर देवताओं के वस्त्र तो करोड़ों रुपये खर्च हो जाएंगे।
उस सम्राट ने कहा, करोड़ों रुपये!
उस आदमी ने कहा कि दिल्ली में जाइए तो लाखों खर्च हो जाते हैं। तो वह
तो स्वर्ग है, वहां करोड़ों रुपये खर्च हो जाएंगे। चपरासी भी वहां करोड़ों से नीचे की बात नहीं करता है।
उस राजा ने कहा, धोखा देने की कोशिश तो नहीं कर रहे हो?
उस आदमी ने कहा कि सम्राटों को धोखा देना मुश्किल है, क्योंकि उनसे बड़े धोखेबाज जमीन पर दूसरे नहीं हो सकते। उनको क्या धोखा दिया जा सकता है? डाकुओं को क्या लूटा जा सकता है? हत्यारों की क्या हत्या की जा सकती है? मैं निरीह आदमी, आपको क्या धोखा दूंगा? और फिर चाहें तो आप पहरा लगा दें, मुझे एक महल के भीतर बंद कर दें। मैं महल के भीतर ही रहूंगा। क्योंकि देवताओं के वहां जाने का रास्ता आंतरिक है, इसलिए बाहर की कोई यात्रा नहीं करनी है। लेकिन करोड़ों रुपये खर्च होंगे और छह महीने लग जाएंगे।
राजा ने कहा, छह महीने! मैं तो सोचता था, तू दिन, दो दिन में ले आएगा।
उसने कहा कि दिन, दो दिन में तो दिल्ली में फाइल नहीं सरकती, तो स्वर्ग में क्या इतना आसान है आप समझते हैं? कोशिश मैं अपनी करूंगा।
राजा ने कहा, ठीक है।
दरबारियों ने कहा, यह आदमी धोखेबाज मालूम पड़ता है। देवताओं के वस्त्र कभी सुने हैं आपने?
राजा ने कहा, लेकिन धोखा देकर यह जाएगा कहां?
नंगी तलवारों का पहरा लगा दिया और उस आदमी को महल में बंद कर दिया। वह रोज कभी करोड़, कभी दो करोड़ रुपये मांगने लगा। छह महीने में उसने अरबों रुपये मांग लिए। लेकिन राजा ने कहा, कोई फिक्र नहीं। जाएगा कहां?
ठीक छह महीने पूरे हुए। वह आदमी पेटी लेकर बाहर आ गया। उसने सैनिकों
से कहा, मैं कपड़े ले आया हूं, चलें महल की तरफ। तब तो शक की कोई बात न रही। सारी राजधानी महल के द्वार पर इकट्ठी हो गई। दूर-दूर से लोग देखने आ गए थे। दूर-दूर से राजे बुलाए गए थे, सेनापति बुलाए गए थे, बड़े लोग बुलाए गए थे, धनपति बुलाए गए थे। दरबार ऐसा सजा था, जैसा कभी न सजा होगा। वह आदमी पेटी लेकर जब उपस्थित हुआ, तो राजा की हिम्मत में हिम्मत आई। अभी तक डरा हुआ था कि अगर बेईमान न हुआ और पागल हुआ, तो भी हम क्या करेंगे? अगर उसने कह दिया कि नहीं मिलते! लेकिन वह पेटी लेकर आ गया तो विश्वास आ गया।
उस आदमी ने आकर पेटी रखी और कहा, महाराज, वस्त्र ले आया हूं। आ जाएं आप, अपने वस्त्र छोड़ दें, मैं आपको देवताओं के वस्त्र देता हूं। पगड़ी लेकर राजा की उसने पेटी के भीतर डाल दी, पेटी के भीतर से हाथ अंदर निकाल कर बाहर लाया, हाथ बिल्कुल खाली था। और उसने कहा, यह सम्हालिए देवताओं की पगड़ी। दिखाई पड़ती है न आपको? क्योंकि देवताओं ने चलते वक्त कहा थाः ये कपड़े उन्हीं को दिखाई पड़ेंगे, जो अपने बाप से पैदा हुए हों।
पगड़ी थी नहीं, दिखाई बिल्कुल नहीं पड़ती थी, लेकिन एकदम दिखाई पड़ने लगी!
उस सम्राट ने कहा, क्यों नहीं दिखाई पड़ती!
सम्राट लेकिन मन में सोचा कि मेरा बाप धोखा दे गया है, पगड़ी दिखाई तो नहीं पड़ती है! लेकिन वह भीतर की बात अब भीतर ही रखनी उचित थी।
दरबारियों ने भी देखा, गर्दनें बहुत ऊपर उठाईं, आंखें साफ कीं, लेकिन पगड़ी नहीं थी। लेकिन सबको दिखाई पड़ने लगी! सब दरबारी आगे बढ़ कर कहने लगे,

महाराज, ऐसी पगड़ी कभी देखी न थी। कोई पीछे रह जाए तो कोई यह न समझ ले कि इसको दिखाई नहीं पड़ती, तो सब एक-दूसरे के आगे होने लगे, जोर-जोर से कहने लगे, कि कहीं धीरे कहो तो किसी को और यह शक न हो जाए कि यह आदमी धीरे बोल रहा है, कहीं ऐसा तो नहीं है कि इसको दिखाई न पड़ती हो।
जब सम्राट ने देखा कि सब दरबारियों को दिखाई पड़ती है, तो उसने सोचा, दिखाई ही पड़ती होगी, जब इतने लोगों को दिखाई पड़ रही है।
फिर हर एक ने यही सोचा कि मैं ही कुछ गड़बड़ में हूं, भीड़ को दिखाई पड़ रही है।
पगड़ी पहन ली। कोट पहन लिया, जो नहीं था। कमीज पहन ली, जो नहीं थी। फिर धोती भी निकल गई। फिर आखिरी वस्त्र के निकलने की नौबत आ गई। तब राजा घबड़ाया कि कहीं कुछ धोखा तो नहीं है, अन्यथा मैं नंगा खड़ा हो जाऊंगा! डरने लगा।
तो उस आदमी ने कहा, झिझकिए मत महाराज, नहीं तो लोगों को शक हो जाएगा। जल्दी से निकाल दीजिए!
झूठ की यात्रा बड़ी खतरनाक है। पहले कदम पर कोई रुक जाए तो रुक जाए, फिर बाद में रुकना बहुत मुश्किल होता है।
अब उसने भी सोचा कि इतनी दूर चल ही आए, और अब इनकार करना, तो आधे नंगे
भी हो गए और पिता भी गए, बहुत गड़बड़ है। अब जो कुछ होगा, होगा। उसने हिम्मत करके आखिरी कपड़ा भी निकाल दिया। लेकिन सारा दरबार कह रहा था कि महाराज धन्य! अदभुत वस्त्र हैं, दिव्य वस्त्र हैं! तो उसे हिम्मत थी कि कोई फिक्र नहीं, नंगा मुझे खुद ही पता चल रहा है। तो अपना नंगापन तो अपने को पता रहता ही है। इसलिए इसमें कोई हर्जा भी नहीं है ज्यादा। चलेगा।
लेकिन उस बेईमान आदमी ने, जो ये वस्त्र लाया था देवताओं के... ।
और देवताओं से वस्त्र लाने वाले और देवताओं की खबर लाने वाले और देवताओं तक पहुंचाने वाले लोग, सब बेईमान होते हैं। सबसे सावधान रहना। इधर आदमी तक पहुंचना मुश्किल है, देवताओं तक पहुंचना आसान है! आदमी को समझना मुश्किल है, और स्वर्ग के नक्शे बनाए हुए बैठे हैं! बड़ौदा की ज्योग्राफी का जिनको पता नहीं, वे स्वर्ग और नरक के नक्शे बनाए बैठे हुए हैं!
उस आदमी ने कहा कि महाराज, देवताओं ने चलते वक्त कहा था, पहली दफे पृथ्वी पर जा रहे हैं ये वस्त्र, इनकी शोभायात्रा नगर में निकलनी बहुत जरूरी है। रथ तैयार है। अब आप चल कर रथ पर सवार हो जाइए। लाखों-लाखों जन भीड़ लगाए खड़े हैं, उनकी आंखें तरस रही हैं, वस्त्रों को देखना है।
राजा ने कहा, क्या कहा? अब तक महल के भीतर थे, अपने ही लोग थे। महल के बाहर, सड़कों पर?
लेकिन उस आदमी ने धीरे से कहा, घबड़ाइए मत, जिस तरकीब से यहां सबको वस्त्र दिखाई पड़ रहे हैं, उसी तरकीब से वहां भी सबको दिखाई पड़ेंगे। आपके रथ के पहले यह डुंडी पीट दी जाएगी सारे नगर में कि ये वस्त्र उसी को दिखाई पड़ते हैं जो अपने बाप से पैदा हुआ है। आप घबड़ाइए मत। अब जो हो गया, हो गया। अब चलिए।
राजा समझ तो गया कि वह बिल्कुल नंगा है और किसी को वस्त्र दिखाई नहीं
पड़ रहे हैं, लेकिन अब कोई भी अर्थ न था। जाकर बैठ गया रथ पर। स्वर्ण-सिंहासन रथ पर लगा था। नंगा राजा, स्वर्ण-सिंहासन पर!
स्वर्ण-सिंहासनों पर नंगे लोग ही बैठे हैं। जिनकी शोभायात्राएं निकल रही हैं, नंगे लोगों की ही हैं।
लेकिन नगर के लाखों लोगों को बस एकदम वस्त्र दिखाई पड़ने लगे! वही लोग
जो महल के भीतर थे, वही महल के बाहर भी हैं। वही आदमी, वही भीड़ वाला आदमी। सब वस्त्रों की प्रशंसा करने लगे। कौन झंझट में पड़े! जब सारी भीड़ को दिखाई पड़ता है तो व्यक्ति की हैसियत से अपने को कौन इनकार करे! कौन कहे कि मुझे दिखाई नहीं पड़ता! इतना बल जुटाने के लिए बड़ी आत्मा चाहिए। इतना बल जुटाने के लिए बड़ा धार्मिक व्यक्ति चाहिए, इतना बल जुटाने के लिए परमात्मा की आवाज चाहिए। कौन इतनी हिम्मत जुटाए? इतनी बड़ी भीड़! फिर मन में यह भी शक

होता है कि जब इतने लोग कहते हैं, तो ठीक ही कहते होंगे। इतने लोग गलत क्यों कहेंगे?
लेकिन कोई भी यह नहीं सोचता कि ये इतने लोग अलग-अलग उतनी ही हैसियत के हैं, जितनी हैसियत का मैं हूं। ये इतने लोग इकट्ठे नहीं हैं, ये एक-एक आदमी ही हैं आखिर में, मेरे ही जैसा। जैसा मैं कमजोर हूं, वैसा ही यह कमजोर है। यह भी भीड़ से डर रहा है, मैं भी भीड़ से डर रहा हूं।
जिससे हम डर रहे हैं, वह कहीं है ही नहीं। एक-एक आदमी का समूह खड़ा हुआ है, और सब भीड़ से डर रहे हैं।
लोग अपने बच्चों को घर ही छोड़ आए थे, लाए नहीं थे भीड़ में। क्योंकि बच्चों का कोई विश्वास नहीं। कोई बच्चा कहने लगे कि राजा नंगा है! तो बच्चों का क्या विश्वास है? बच्चों को बिगाड़ने में वक्त लग जाता है। स्कूल, कालेज, युनिवर्सिटी, सब इंतजाम करो, फिर भी बड़ी मुश्किल से बिगाड़ पाते हो। एकदम आसान नहीं है बिगाड़ देना।
छोटे-छोटे बच्चों को कोई नहीं लाया था। लेकिन कुछ बच्चे जोरदार थे।
और कुछ बच्चे ऐसे थे जिनकी माताओं की वजह से पिताओं को उनसे डरना पड़ता था, उनको लाना पड़ा था। वे कंधों पर सवार होकर आ गए थे। उन बच्चों ने देखते ही से कहा, अरे! राजा नंगा है!
उनके बाप ने कहा, चुप नादान! अभी तुझे अनुभव नहीं है, इसलिए नंगा दिखाई पड़ता है। ये बातें बड़े गहरे अनुभव की हैं, अनुभवियों को दिखाई पड़ती हैं। जब उम्र तेरी बढ़ेगी, तुझको भी दिखाई पड़ने लगेंगी। यह उम्र से आता है ज्ञान।
उम्र से दुनिया में कोई ज्ञान कभी नहीं आता। उम्र के भरोसे मत बैठे रहना। उम्र से बेईमानी आती है, चालाकी आती है, कनिंगनेस आती है; उम्र से ज्ञान कभी नहीं आता। लेकिन सब चालाक लोग यह कहते हैं कि उम्र से ज्ञान आता है।
फिर बेटे कहने लगे कि आप कहते हैं कि... आपको दिखाई पड़ रहे हैं वस्त्र? हां, हमें दिखाई पड़ रहे हैं, उनके पिताओं ने कहा, बिल्कुल दिखाई पड़ रहे हैं। हम अपने ही बाप से पैदा हुए हैं, ऐसा कैसे हो सकता है कि हमको दिखाई न पड़ें! और तुम अभी बच्चे हो, नासमझ हो, भोले हो; अभी तुम्हें समझ नहीं आ रहा है।
जिन बच्चों को सत्य दिखाई पड़ा था, उन्हें भीड़ के भय का कोई पता नहीं था, इसीलिए दिखाई पड़ा था। बड़े होंगे, भीड़ से भयभीत हो जाएंगे। फिर उनको भी वस्त्र दिखाई पड़ने लगते हैं। यह भीड़ डराए हुए है चारों तरफ से एक-एक आदमी को।
इसलिए जीसस ने कहा है... एक बाजार में वे खड़े थे। कुछ लोग उनसे पूछने लगे कि तुम्हारे स्वर्ग के राज्य में, तुम्हारे परमात्मा के दर्शन को कौन उपलब्ध हो सकता है? तो जीसस ने चारों तरफ नजर दौड़ाई, और एक छोटे से बच्चे को उठा कर ऊपर कर लिया और कहा कि जो इस बच्चे की तरह है।
क्या मतलब रहा होगा? क्या साइज छोटी होगी तो ईश्वर के राज्य में चले जाइएगा? कि उम्र कम होगी तो ईश्वर के राज्य में चले जाइएगा? नहीं! क्या बच्चे मर जाएंगे तो सब ईश्वर के राज्य में चले जाएंगे? नहीं! लेकिन बच्चों की तरह होंगे, इसका मतलब है, जो भीड़ से भयभीत नहीं। जो सीधे और साफ हैं। जिन्हें जो दिखता है, वही कहते हैं कि दिखता है। जिन्हें जो नहीं दिखता, कहते हैं कि नहीं दिखता है। जो झूठ को मान लेने को राजी नहीं। जो बच्चों की तरह होंगे, वे। बच्चे नहीं, बच्चों की तरह!
बच्चों की तरह का मतलब?
बच्चे अकेले हैं, बच्चे इंडिविजुअल हैं। बच्चों को भीड़ से कोई मतलब नहीं है। अभी भीड़ की उन्हें फिक्र नहीं है। अभी भीड़ का उन्हें पता भी नहीं है कि भीड़ भी है। और भीड़ बड़ी अदभुत चीज है। उसकी बड़ी अनजानी ताकत चारों तरफ से जकड़े हुए है आदमी को।
इसलिए दूसरा सूत्र मैंने कहा कि जिन्हें जीवन की सत्य के तरफ जाना है, भीड़ की खूंटी से मुक्त हो जाएं।

यह मतलब नहीं है कि आप भीड़ से भाग जाएं। भागेंगे कहां? भीड़ सब जगह है। कहां भागेंगे? जहां जाएंगे वहीं भीड़ है। और अभी तो थोड़ी-बहुत पहाड़ियां बच गई हैं जहां भाग भी सकते हैं, लेकिन कुछ ही दिनों में पहाड़ियां भी नहीं बचेंगी। वैज्ञानिक कहते हैं कि सौ वर्षों में अगर भारत, चीन जैसे देश बच्चों को पैदा करने के अपने महान कार्य में संलग्न रहे, तो दुनिया में कुहनी हिलाने की जगह नहीं रह जाने वाली। सभा-वभा करने की जरूरत नहीं रहेगी, कहीं भी खड़े हो जाइए और सभा हो जाएगी।
कहां भागिएगा भीड़ से? जंगलों में, पहाड़ों में? कोई मतलब नहीं है! भीड़ वहां भी बहुत सूक्ष्म रूप में पीछा करती है।
एक आदमी साधु हो जाता है, भाग जाता है जंगल में। जंगल में बैठा है, उससे पूछिए, आप कौन हैं? वह कहता है, मैं हिंदू हूं!
भीड़ पीछा कर रही है उसका। अब तुम हिंदू कैसे हो? तुम जब छोड़ कर भाग आए
तो तुम हिंदू कैसे रह गए? अभी तक आदमी नहीं हुए?
आदमी होना बहुत मुश्किल है, हिंदू होना बहुत आसान है।
एक आदमी साधु हो गया, वह कहता है, मैं जैन हूं!
अब तुम समाज को छोड़ दिए तो तुम जैन कैसे हो? यह जैन-वैन होना तो समाज
ने सिखाया था।
साधु भी हिंदू, जैन और मुसलमान हैं, तो फिर असाधुओं का क्या हिसाब रखना। तो ठीक है! गांधी जैसे अच्छे आदमी भी इस भ्रम से मुक्त नहीं होते कि मैं हिंदू हूं। चिल्लाए चले जाते हैं कि मैं हिंदू हूं। तो साधारण लोगों की क्या हैसियत है! गांधी जैसा अच्छा आदमी भी हिम्मत नहीं जुटा पाता कि कहे कि मैं आदमी हूं बस; और कोई विशेषण नहीं लगाऊंगा। अगर अकेले गांधी ने भी हिम्मत जुटा ली होती और यह कहा होता कि मैं सिर्फ आदमी हूं, जिन्ना की जान निकल गई होती। लेकिन गांधी के हिंदू ने जिन्ना की जान न निकलने दी। हिंदुस्तान बंटा, गांधी के हिंदू होने की वजह से बंटा; हिंदुस्तान कभी नहीं बंटता।
लेकिन ख्याल में नहीं आता हमें यह कि इतनी छोटी सी बातें कितने बड़े परिणाम ला सकती हैं। गांधी का हिंदू होना संदिग्ध करता रहा मन को मुसलमान के। गांधी का आश्रम, गांधी के हिंदू ढंग, गांधी की प्रार्थना, पूजा-पत्री-- सब यह वहम पैदा करती रही कि हिंदू महात्मा हैं। और हिंदू महात्मा से सावधान होना जरूरी है मुसलमान को। एक भीड़ से दूसरी भीड़ सदा सावधान होती है; क्योंकि एक भीड़ से दूसरी भीड़ को डर है; एक दुकान से दूसरी दुकान को डर है।
जिन्ना का मुसलमान खत्म हो जाता, गांधी का हिंदू खत्म नहीं हो सका। और जिन्ना से हम आशा नहीं करते हैं कि उसका खत्म हो, वह आदमी साधारण है; गांधी से हम आशा कर सकते हैं। लेकिन गांधी से ही खत्म नहीं हो सका, तो जिन्ना से क्या खत्म हो सकता है!
भीड़ पीछा करती है; भीड़ बहुत सटल, बहुत सूक्ष्म रास्ते से पीछा करती है।
बर्ट्रेंड रसेल ने कहीं कहा है कि मैंने पढ़-लिख कर, बहुत कुछ सोचा और समझा और पाया कि बुद्ध से अदभुत आदमी दूसरा नहीं हुआ है। लेकिन जब भी मैं यह सोचता हूं कि बुद्ध सबसे महान हैं, तभी मेरे भीतर कोई बेचैनी होने लगती है और कोई कहता है कि नहीं, क्राइस्ट से महान नहीं हो सकता!
भीड़ बैठी है। बचपन से सिखाया है जो, वह भीतर बैठी है। वह कहती है, नहीं! सवाल नहीं है कि कौन महान है, किसी के महान का हिसाब लगाना भी नासमझी है। लेकिन बचपन से जो भीड़ सिखा देती है, जो कंडीशनिंग, जो चित्त को संस्कारित करती है, वह जीवन भर पीछा करता है; मरते दम तक पीछा करता है।
एक सज्जन हैं। बहुत बड़े विचारशील आदमी हैं। उनका नाम नहीं लूंगा; क्योंकि किसी का नाम लेना इस मुल्क में ऐसा खतरनाक है जिसका कोई हिसाब नहीं। किसी का नाम ही नहीं लिया जा सकता। अंधेरे में ही बात करनी पड़ती है। एक बड़े विचारक हैं। वे मुझसे कहते थे कि मेरा सब छूट गया। जप, तप, पूजा-पाठ, सब छोड़ दिया। मैं सबसे मुक्त हो गया हूं।

मैंने कहा, इतना आसान नहीं है मामला। यह मुक्त होना इतना आसान नहीं है। क्योंकि जब आप कहते हैं कि मैं मुक्त हो गया हूं, तब भी मैं आपकी आंख में झांकता हूं और मुझे लगता है कि आप मुक्त नहीं हुए हैं। अगर मुक्त हो गए होते, तो "मुक्त हो गया हूं", यह ख्याल भी छूट गया होता। मुक्त आप नहीं हुए हैं।
उन्होंने कहा कि नहीं, मैं मुक्त हो गया हूं!
मैंने कहा, जितने जोर से आप कहेंगे, मुझे शक उतना ही बढ़ता चला जाएगा। वक्त आएगा, कहूंगा।
उन पर हार्ट-अटैक हुआ। हार्ट-अटैक हुआ तो मैं उनको देखने गया। आंख बंद थी, कुछ बेहोश से पड़े थे और राम-राम, राम-राम, राम-राम का जाप चल रहा था। मैंने उनको हिलाया। मैंने कहा, क्या कर रहे हैं?
उन्होंने कहा कि मैं बड़ी हैरानी में पड़ गया हूं। जिस क्षण से हार्ट-अटैक हुआ और ऐसा लगा कि मर जाऊंगा, जिस पूजा-पाठ को सदा के लिए छोड़ दिया था, वह एकदम चलना शुरू हो गया है! अब मैं रोकना भी चाहता हूं तो नहीं रुकता; मेरे भीतर चल रहा है जोर से--राम-राम, राम-राम, राम-राम। मैं सोचता था छोड़ दिया, आप कहते थे--शायद ठीक ही कहते थे--छोड़ना बहुत मुश्किल है।
इतने गहरे में उसकी जड़ें बैठी हैं भीड़ की। वह जो सिखा देती है, वह भीतर बैठा हुआ है। वह भीतर गहरे से गहरे में बैठ गया है।
अब गांधी जी कितना कहते थे--अल्लाह ईश्वर तेरे नाम। लेकिन जब गोली लगी, तो अल्लाह का नाम याद नहीं आया। नाम याद आया--हे राम! अल्लाह का नाम याद नहीं आया। गोली लगी तो याद आया--हे राम! वह हिंदू भीतर बैठा है। वह वहां भीतर आत्मा के भीतर से भीतर घुस गया है। वह वहां से जब गोली लगी, तो सब भूल गया अल्लाह ईश्वर तेरे नाम। निकला--हे राम! हे अल्लाह निकल जाता शायद गांधी से... बड़ा मुश्किल था लेकिन, नहीं निकल सकता था। यह असंभव था। वह हिंदू भीतर बैठा है।
गहरे में भीड़ घुस जाती है आदमी के। भीड़ से भागने का मतलब यह नहीं है कि जंगल चले जाना। भीड़ से भागने का मतलब--अपने भीतर खोजना। और जहां-जहां भीड़ के चिह्न पाएं, उनको उखाड़ कर फेंक देना। और धीरे-धीरे कोशिश जारी रखना कि व्यक्ति का आविर्भाव हो जाए। भीड़ से मुक्त चित्त ऊपर उठ आए; भीड़ छूट जाए। भीतर, अंतस में, चित्त में... ।
जो आदमी अपने चित्त की वृत्तियों को दबाता है, वह जिन वृत्तियों को दबाता है, उन्हीं से बंध जाता है। जिससे बंधना हो, उसी से लड़ना शुरू कर देना। दोस्त से उतना गहरा बंधन नहीं होता, जितना दुश्मन से होता है। दोस्त की तो कभी-कभी याद आती है; सच तो यह है कि कभी नहीं आती। जब मिलता है, तभी कहते हैं कि बड़ी याद आती है। लेकिन दुश्मन की चौबीस घंटे याद बनी रहती है। रात सो जाओ, तब भी वह साथ सोता है। सुबह उठो, दुश्मन साथ उठता है। जितनी गहरी दुश्मनी हो, उतना गहरा साथ हो जाता है। इसलिए दोस्त कोई भी चुन लेना, दुश्मन थोड़ा सोच-विचार कर चुनना चाहिए। क्योंकि उसके चौबीस घंटे साथ रहना पड़ता है। दोस्त कोई भी चल जाता है--ऐरा-गैरा, क, ख, ग--कोई भी चल जाता है। लेकिन दुश्मन? दुश्मन के साथ हमेशा रहना पड़ता है।
यह मैंने तीसरे सूत्र में कहा कि दमन भूल कर मत करना। क्योंकि दमन अच्छी चीजों का तो कोई करता नहीं है, दमन करता है बुरी चीजों का। और जिनका दमन करता है, जिनसे लड़ता है, उन्हीं से गठबंधन हो जाता है, उन्हीं के साथ फेरा पड़ जाता है। जिस चीज को हम दबाते हैं, उसी से जकड़ जाते हैं।
मैंने सुना है, एक होटल में एक रात एक आदमी मेहमान हुआ। लेकिन होटल के मैनेजर ने कहा, जगह नहीं है, आप कहीं और चले जाएं। एक ही कमरा खाली है और वह हम देना नहीं चाहते। उसके नीचे एक सज्जन ठहरे हुए हैं। अगर ऊपर जरा ही खड़बड़ हो जाए, आवाज हो जाए, कोई जोर से चल दे, तो उनसे झगड़ा हो जाता है। तो जब से उसको पिछले मेहमान ने खाली किया है, हमने तय किया है कि अब खाली ही रखेंगे, जब तक नीचे के सज्जन विदा नहीं ले लेते।
कुछ सज्जन ऐसे होते हैं जिनके आने की राह देखनी पड़ती है, कुछ सज्जन ऐसे होते हैं जिनके जाने की भी राह देखनी पड़ती है। और दूसरी तरह के ही

सज्जन ज्यादा होते हैं; पहली तरह के सज्जन तो बहुत मुश्किल हैं, जिनके आने की राह देखनी पड़ती है।
उस मैनेजर ने कहा कि क्षमा करिए, हम उनके जाने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। जब वे चले जाएं, तब आप आइए।
उस आदमी ने कहा, आप घबड़ाएं न, मैं सिर्फ दो-चार घंटे ही रात सोऊंगा। दिन भर बाजार में काम करना है, रात दो बजे लौटूंगा, सो जाऊंगा। सुबह छह बजे उठ कर मुझे गाड़ी पकड़ लेनी है। अब नींद में उनसे कोई झगड़ा होगा, इसकी आशा नहीं है। नींद में चलने की मेरी आदत भी नहीं है। और कोई गड़बड़ नहीं है, मैं सो जाऊंगा, आप फिक्र न करें।
मैनेजर मान गया। वह आदमी दो बजे रात लौटा, थका-मांदा दिन भर के काम के बाद। बिस्तर पर बैठ कर उसने जूता खोल कर नीचे पटका। तब उसे ख्याल आया कि कहीं नीचे के मेहमान की जूते की आवाज से नींद न खुल जाए! तो उसने दूसरा जूता धीरे से निकाल कर रख कर वह सो गया।
घंटे भर बाद नीचे के मेहमान ने दस्तक दी--कि सज्जन, दरवाजा खोलिए!
वह बहुत हैरान हुआ कि घंटा भर मेरी नींद भी हो चुकी, अब क्या गलती हो
गई होगी? दरवाजा खोला डरा हुआ। उस आदमी ने पूछा कि दूसरा जूता कहां है? मुझे बहुत मुश्किल में डाल दिया। जब पहला जूता गिरा, मैंने समझा कि अच्छा, महाशय आ गए। फिर दूसरा जूता गिरा ही नहीं! अब मैं प्रतीक्षा कर रहा हूं कि दूसरा जूता अब गिरे, अब गिरे। फिर मैंने अपने मन को समझाया--मुझे किसी के जूते से क्या लेना-देना? हटाओ, कुछ भी हो! लेकिन जितना मैंने हटाने की कोशिश की, दूसरा जूता मेरी आंखों में झूलने लगा। आंख बंद करता हूं, जूता लटका दिखता है। आंख खोलता हूं... ! बड़ी बेचैनी हो गई, नींद आनी मुश्किल हो गई। धक्का देने लगा। बहुत समझाया कि कैसा पागल है तू! किसी के जूते से अपने को क्या मतलब! चाहे एक जूता पहन कर सो रहा हो, सोने दो। जो चाहे, करने दो उसे। लेकिन जितना मैंने मन को समझाया, दबाया, लड़ा, उतना ही वह जूता बड़ा होता गया और सिर पर घूमने लगा।
अपनी-अपनी खोपड़ी की तलाश अगर आदमी करे, तो पाएगा कि दूसरों के जूते वहां घूम रहे हैं, जिनसे कुछ लेना-देना नहीं है। लड़े, कि खतरा हुआ।
उस आदमी ने कहा, क्षमा करिए! इसलिए मैं पूछने आया, पता चल जाए तो मैं सो जाऊं शांति से, यह झगड़ा बंद हो।
जो उस आदमी के साथ हुआ, वह सबके साथ होगा।
सप्रेसिव माइंड, दमन करने वाला चित्त हमेशा व्यर्थ की बातों में उलझ जाता है।
सेक्स को दबाओ, और चौबीस घंटे सेक्स का जूता सिर पर घूमने लगेगा।
क्रोध को दबाओ, और चौबीस घंटे क्रोध प्राणों में घुस कर चक्कर काटने लगेगा। और एक तरफ से दबाओ, और दूसरी तरफ से निकलने की चेष्टा होगी। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति एक ऊर्जा है, एनर्जी है। आप दबाओगे एनर्जी को तो वह कहीं से निकलेगी। एक झरने को आप इधर से दबा दो, वह दूसरी तरफ से फूट कर बहेगा। उधर से दबाओ, तीसरी तरफ से बहेगा। झरना है, तो दबाने से काम नहीं हो सकता।
एक आदमी दफ्तर में है। उसका मालिक कुछ बेहूदी बातें कह दे। और मालिक बेहूदी बातें कहते हैं; नहीं तो मालिक होने का मजा ही खत्म। मजा क्या है मालिक होने में? किसी से बेहूदी बातें कह सकते हो, और वह आदमी यह भी नहीं कह सकता कि आप बेहूदी बातें कह रहे हैं। और फिर मालिक बेहूदी बातें कहे या न कहे, नौकर को मालिक की सब बातें बेहूदी मालूम पड़ती हैं। नौकर होना ही इतनी बेहूदगी है कि अब और जो भी कुछ कहा जाए वह बेहूदगी मालूम पड़ती है। अगर मालिक या बॉस जोर से बोलता है, क्रोध की बातें कहता है, तो भी नौकर
को खड़े होकर मुस्कुराना पड़ता है। भीतर आग लग रही है कि गर्दन दबा दें! ऐसा कौन नौकर होगा जिसको मालिक की गर्दन दबाने का ख्याल न आता हो? आता है, जरूर आता है। आना भी चाहिए, नहीं तो दुनिया बदलेगी भी नहीं! मगर ऊपर से मुस्कुराहट, ओंठ फैला देगा छह इंच और कहेगा कि बड़ी अच्छी बातें कह रहे हैं। बड़े वेद-वचन बोल रहे हैं। बड़ी वाणी आपकी मधुर है। उपनिषद के ऋषि भी क्या बोलते होंगे ऐसी बातें! धन्यभाग कि आपके अमृत-वचन मेरे ऊपर गिरे!

भीतर आग जल रही है। दबा लेगा अपने क्रोध को। लेकिन क्रोध को दबा कर कितनी देर चल सकते हो? साइकिल चलाएगा तो पैडल जोर से चलेगा। कार ड्राइव करेगा तो कार एकदम साठ से सौ पर भागने लगेगी। वह जो क्रोध दबाया है, वह सब तरफ से निकलने की कोशिश करेगा।
अमेरिका के मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अगर आदमी के क्रोध की कोई समझ पैदा हो सके, तो अमेरिका के एक्सीडेंट पचास प्रतिशत कम हो जाएंगे। वे जो एक्सीडेंट हो रहे हैं, वे सड़क की वजह से कम हो रहे हैं, दिमाग की वजह से ज्यादा हो रहे हैं।
आपको पता है, जब क्रोध में साइकिल चलाते हैं तो किस तरह चलती है साइकिल? एकदम हवा लग जाती है उसे! फिर कोई नहीं दिखता। ऐसा मालूम पड़ता है-- रास्ता खाली है एकदम। और सामने कोई आ जाए तो और ऐसा मन होता है कि टकरा दूं जोर से; क्योंकि वह भीतर जो टकराहट चल रही है।
वह आदमी तेजी से साइकिल चलाता हुआ घर पहुंचेगा। रास्ते में दो-चार बार बचेगा टकराने से। क्रोध और भारी हो जाएगा। अब जाकर वह घर प्रतीक्षा करेगा कि कोई मौका मिल जाए और पत्नी की गर्दन दबा ले।
पत्नी बड़ी सरल चीज है। वह है ही इसलिए कि आप घर आइए और उसकी गर्दन दबाइए। उसका मतलब क्या है? उसका उपयोग क्या है और? उसका असली उपयोग यह है कि जिंदगी भर का जो कुछ आपके ऊपर गुजरे, वह जाकर पत्नी पर रिलीज करिए। उसको निकालिए वहां पर।
घर पहुंचते से ही सब गड़बड़ी दिखाई पड़ने लगेगी। पत्नी जिसको कल रात ही आपने कहा था कि तू बड़ी सुंदर है, एकदम मालूम पड़ेगी कि यह शूर्पणखा कहां से आ गई? सब खत्म हो जाएगा। फिल्म की अभिनेत्रियां याद आएंगी कि सौंदर्य उसको कहते हैं। यह औरत? रोटी जली हुई मालूम पड़ेगी। सब्जी में नमक नहीं मालूम पड़ेगा। सब गड़बड़ मालूम पड़ेगा। घर अस्तव्यस्त घूमता हुआ मालूम पड़ेगा। टूट पड़ेंगे उस पर।
कल भी रोटी ऐसी ही थी; क्योंकि कल भी पत्नी यही थी। कल भी पत्नी यही थी
जो आज है; लेकिन आज सब बदला हुआ मालूम पड़ेगा। वह जो भीतर दबाया है, वह निकलने के लिए मार्ग खोज रहा है। और ध्यान रहे, जैसे पानी ऊपर की तरफ नहीं चढ़ता, ऐसे क्रोध भी ऊपर की तरफ नहीं चढ़ता। पानी भी नीचे की तरफ उतरता है, क्रोध भी नीचे की तरफ उतरता है। कमजोर की तरफ उतरता है, ताकतवर की तरफ नहीं उतरता। मालिक की तरफ नहीं चढ़ सकता है क्रोध। चढ़ाना हो तो बड़े पंप लगाना जरूरी है। कम्युनिज्म वगैरह के पंप लगाओ, तब चढ़ सकता है मालिक की तरफ; नहीं तो नहीं चढ़ता। पत्नी की तरफ एकदम उतर जाता है। और पत्नी कुछ भी नहीं कर सकती, क्योंकि पति परमात्मा है।
ये पति लोग ही समझा रहे हैं पत्नियों को कि हम परमात्मा हैं। बड़े मजे
की बातें दुनिया में चल रही हैं! और कोई स्त्री नहीं कहती कि महाशय, आप और परमात्मा? आप ही परमात्मा हैं? तो परमात्मा पर भी शक पैदा हो जाएगा अगर आप ही परमात्मा हैं! आपकी इज्जत नहीं बढ़ती परमात्मा होने से, परमात्मा की इज्जत घटती है आपके होने से। कृपा करके परमात्मा को बाइज्जत जीने दो, आप परमात्मा मत बनो।
लेकिन कोई स्त्री नहीं कहेगी! स्त्री के पास फिजूल की बकवास करने के लिए बहुत ताकत है, लेकिन बुद्धिमत्ता की एक बात स्त्री से नहीं निकल सकती। परमात्मा की तरफ तो क्रोध नहीं किया जा सकता। उसको भी राह देखनी पड़ेगी। आग लग जाएगी उसके भीतर भी, बच्चे का रास्ता देखना पड़ेगा कि आओ बेटा, आज तुम्हारा सुधार किया जाए। उस बेचारे को पता नहीं, वह अपना नाचता हुआ, अपना बस्ता लिए हुए स्कूल से चला आ रहा है। उसको पता ही नहीं कि वह कहां जा रहा है। उधर मां तैयार है, प्रतीक्षा कर रही है सुधार करने की।
जितने लोग सुधार की प्रतीक्षा करते हैं--ध्यान रखना--भीतर कोई क्रोध है, जिसकी वजह से सुधार की आयोजना चलती है। जिनके अपने बेटे नहीं होते, वे अनाथालय खोल लेते हैं; जिनका अपना घर नहीं होता, वे आश्रम बना लेते हैं; लेकिन सुधार करते हैं! जिनको कोई नहीं मिलता, वे समाज की कोई भी तरकीब निकाल कर सुधार करने में लग जाते हैं। भीतर क्रोध है, भीतर आग है; किसी को तोड़ने, मरोड़ने, बदलने की इच्छा है।

वह बच्चा आते ही से फंस जाएगा। कल भी वह ऐसे ही आया था नाचता हुआ, लेकिन आज नाचना उसका उपद्रव मालूम पड़ेगा।
हमें वही दिखाई पड़ता है, जो हमारे भीतर है। हमारा सब देखना प्रोजेक्शन है।
आज उसके कपड़े गंदे मालूम पड़ेंगे। वह रोज ऐसे ही आता है। बच्चे कपड़े गंदे नहीं करेंगे तो बूढ़े कपड़े गंदे करेंगे? बच्चे तो कपड़े गंदे करेंगे। क्योंकि बच्चों को कपड़ों का पता ही नहीं है। कपड़ों का पता रखने के लिए भी आदमी को बहुत चालाक होने की जरूरत है। बच्चों को कहां होश? कपड़े फट गए हैं, किताब फट गई है, स्लेट फूट गई है--और आज बच्चे का सुधार किया जाएगा।
लेकिन मां को पता भी नहीं चलेगा कि वह बच्चे की शक्ल में पति को चांटे मार रही है; चांटे पति को पड़ रहे हैं। और बच्चे भलीभांति जानते हैं कि उनकी पिटाई कब होती है! जब मां-बाप में वार चलता है तब। मां-बाप लड़ते हैं, बच्चे पिटते हैं।
इसलिए जिनके बच्चे नहीं होते, उनके घर में बड़ी मुश्किल हो जाती है; क्योंकि पिटने के लिए कोई कॉमन एनिमी नहीं है; किसको पीटो! फिर अगर ऐसा न हो तो प्लेटें टूट जाती हैं, रेडियो गिर जाता है; फिर दूसरे उपाय खोजने पड़ते हैं। आपको मालूम होगा भलीभांति कि प्लेट कब टूटती है। और पत्नियों को भी मालूम है कि कब एकदम हाथ से प्लेटें छूटने लगती हैं।
लेकिन बच्चा पिटेगा। बच्चा क्या कर सकता है? मां के लिए क्या कर सकता है? मां के प्रति क्रोध कैसे करे? अगर मां के प्रति क्रोध करना है तो जरा प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। पंद्रह-बीस साल बहुत लंबी प्रतीक्षा है, जब एक औरत और आ जाए पीछे ताकत देने को। क्योंकि किसी भी औरत से लड़ना हो तो एक औरत का साथ जरूरी है, नहीं तो हार निश्चित है। औरत से औरत ही लड़ सकती है, आदमी नहीं लड़ सकता। राह देखनी पड़ेगी। लेकिन वह बहुत लंबा वक्त है। और वक्त देखना पड़ेगा कि जब मां बूढ़ी हो जाए; क्योंकि तब पांसा बदल जाएगा। अभी मां ताकतवर है, बच्चा कमजोर है। तब बच्चा ताकतवर होगा, मां कमजोर हो जाएगी।
वह जो बूढ़े मां-बाप को बच्चे सताते हैं, वह डिलेड रिवेंज है, वह लंबी प्रतीक्षा करता हुआ क्रोध है। और जब तक मां-बाप बच्चों को सताते रहेंगे, तब तक बूढ़े मां-बापों को सावधान रहना चाहिए, बच्चे उनको सताएंगे। लेकिन वह बहुत लंबी बात है। उतनी देर तक प्रतीक्षा नहीं की जा सकती है। क्रोध इतनी देर के लिए मानने को राजी नहीं हो सकता। फिर बच्चा क्या करे? जाएगा, अपनी गुड़िया की टांग तोड़ देगा! किताब फाड़ देगा! कुछ करेगा। जो भी वह कर सकता है, वह करेगा!
दबाया हुआ क्रोध इतने रास्ते लेगा, इतनी तकलीफों में डालेगा, इतनी मुश्किलों में उलझा देगा। दबाया हुआ अहंकार नये-नये रास्ते खोजेगा। दबाया हुआ लोभ नये-नये रास्ते खोजेगा।
मैं एक संन्यासी के पास था। वे संन्यासी मुझसे बार-बार कहने लगे... ।
और संन्यासियों के पास बेचारों के पास और कुछ कहने को होता ही नहीं। धनपति के पास जाइए, तो वह अपने धन का हिसाब बताता है कि इतने करोड़ थे, अब इतने करोड़ हो गए; मकान तिमंजिला था, सात मंजिला हो गया। पंडितों के पास जाइए तो वे अपना बताते हैं कि अभी एम.ए. थे, अब पीएचड़ी. भी हो गए, अब डी.लिट. भी हो गए; अब यह हो गए, वह हो गए! पांच किताबें छपी थीं, अब पंद्रह छप गईं! वे अपना बताएंगे। त्यागी संन्यासी क्या बताए? वह भी अपना हिसाब रखता है त्याग का!
वे मुझसे रोज-रोज कहने लगे, मैंने लाखों रुपयों पर लात मार दी!
वे सत्य ही कहते होंगे। चलते वक्त मैंने पूछा कि महाराज, यह लात मारी कब? कहने लगे, कोई पैंतीस साल हो गए। मैंने कहा, लात ठीक से लग नहीं पाई, नहीं तो पैंतीस साल तक याद रखने की क्या जरूरत है? पैंतीस साल बहुत लंबा वक्त है। और बेचारी लात मार दी, मार दी, खत्म करो! अब इसे पैंतीस साल याद रखने की क्या जरूरत है?
लेकिन वे अखबार की कटिंग रखे हुए थे अपनी फाइल में, जिसमें छपी थी पैंतीस साल पहले यह खबर। कागज पुराने पड़ गए थे, पीले पड़ गए थे, लेकिन मन को बड़ी राहत देते होंगे। दिखाते-दिखाते गंदे हो गए थे, अक्षर समझ में नहीं

आते थे। लेकिन उनको तृप्ति हो जाती होगी--पैंतीस साल पहले उन्होंने लाखों रुपयों पर लात मारी।
मैंने उनसे कहा, लात ठीक से लग जाती तो रुपये भूल जाते। लात ठीक से लगी नहीं। लात लौट कर वापस आ गई। पहले अकड़ रही होगी कि मेरे पास लाखों रुपये हैं। अहंकार रहा होगा। सड़क पर चलते होंगे तो भोजन की कोई जरूरत न रही होगी, बिना भोजन के भी चल जाते होंगे। ताकत, गर्मी रही होगी भीतर--लाखों रुपये मेरे पास हैं! फिर लाखों को छोड़ दिया, तब से अकड़ दूसरी आ गई होगी कि मैंने लाखों पर लात मार दी! मैं कोई साधारण आदमी हूं? और पहली अकड़ से दूसरी अकड़ ज्यादा खतरनाक है। पहले अहंकार से दूसरा अहंकार ज्यादा सूक्ष्म है। दबाया हुआ अहंकार वापस लौट आया है। अब वह और बारीक होकर आया है कि तुम पहचान न जाना।
जो भी आदमी चित्त के साथ दमन करता है, वह सूक्ष्म से सूक्ष्म उलझनों में उलझता चला जाता है। यह मैंने तीसरा सूत्र कहाः दमन से सावधान रहना! दमन करने वाला आदमी रुग्ण हो जाता है, अस्वस्थ हो जाता है, बीमार हो जाता है। और दमन का अंतिम परिणाम विक्षिप्तता है, मैडनेस है।
ये तीन बातें मैंने इन तीन दिनों में कहीं। आज चौथी बात और अंतिम बात आपसे कहना चाहता हूं। और वह यह कि फिर क्या करें? न शास्त्र को मानें, न समाज को, न नीतिशास्त्र को--जो कहता है कि दबाओ, दमन करो, लड़ो--फिर क्या करें?
एक ही बात, एक छोटा सा सूत्र। छोटा है, सूत्र है, लेकिन बड़ी विस्फोट की, बड़ी एक्सप्लोजन की शक्ति है उसमें। जैसे एक छोटे से अणु में इतनी ताकत है कि सारी पृथ्वी को नष्ट कर दे, ऐसे ही इस छोटे से सूत्र में शक्ति है।
इन तीनों जंजीरों से मुक्त होने के लिए एक ही सूत्र है। और वह सूत्र है--जागरण, जागना, अवेयरनेस, ध्यान, अमूर्च्छा, होश, माइंडफुलनेस--कोई भी नाम दें। जागो! एक ही सूत्र है छोटा सा।
उन सिद्धांतों के प्रति जागो जो पकड़े हुए हैं। और जागते ही उन सिद्धांतों से छुटकारा शुरू हो जाएगा। क्योंकि सिद्धांत आपको नहीं पकड़े हैं, आप उन्हें पकड़े हुए हैं। और जैसे ही आप जागे और आपको लगा कि अजीब बात है, गुलाम मैं बना हूं और गुलामी की जंजीर मेरी ही अपने हाथ में है! फिर छूटने में देर नहीं लगती।
पहला जागरण चित्त के सिद्धांतों, वादों, संप्रदायों, धर्मों, गुरुओं, महात्माओं के प्रति, जिनको हम जोर से पकड़े हुए हैं। कुछ भी नहीं है हाथ में, कोरी राख है शब्दों की, लेकिन जोर से पकड़े हुए हैं। कभी हाथ खोल कर भी नहीं देखते हैं। डर लगता है कि कहीं देखा और कुछ न पाया, तो बहुत मुश्किल हो जाएगी। उसे गौर से देखना जरूरी है कि मैं किस-किस चीजों से जकड़ा हुआ हूं? मेरी जंजीरें कहां हैं? मेरी स्लेवरी, मेरी गुलामी कहां है? मेरी आध्यात्मिक दासता कहां छिपी है? उसके प्रति एक-एक चीज के प्रति जागना जरूरी है।
और जो आदमी अपने भीतर की गुलामी के प्रति जागेगा, जागने के अतिरिक्त गुलामी को तोड़ने के लिए और कुछ भी नहीं करना पड़ता है। जागते ही गुलामी टूटनी शुरू हो जाती है। क्योंकि यह गुलामी कोई लोहे की जंजीरों की नहीं है, जिनको तोड़ने के लिए हथौड़े और आग जलानी पड़ेगी। ये जंजीरें कुछ बाहर नहीं हैं। ये जंजीरें सोए हुए होने की जंजीरें हैं। हमने कभी होश से देखा ही नहीं कि हमारी भीतर की मनोदशा क्या है, इसलिए हम चलते रहे हैं अंधेरे में। जाग जाएंगे तो पता चलेगा कि यह तो हमने अपने हाथ से पागलपन कर रखा है। कोई दूसरा इसमें सहभागी नहीं है, हम खुद ही जिम्मेवार हैं। हम तोड़ दे सकते हैं जैसे ही होश आ जाए।
तो जागरण--सिद्धांतों, शास्त्रों, संप्रदायों के प्रति; यह हिंदू होने के प्रति, मुसलमान होने के प्रति; यह भारतीय होने के प्रति, चीनी होने के प्रति; ये सारी सीमाओं के प्रतिबंधन--इसके प्रति बोध, इसके प्रति जागरण। यह कंडीशनिंग जो भीतर है माइंड के--इसके प्रति देखना कि यह क्या है? यह मैं क्यों बंधा हूं इससे? कौन मुझे हिंदू बना गया? किसने मुझे सिद्धांत से अटका दिया?

याद ही नहीं है। मन में घुस गई हैं चीजें बाहर से आकर और हमने उन्हें पकड़ लिया है। उन्हें छोड़ देना है। छोड़ते ही एक फ्रीडम, एक मुक्ति, एक चित्त की मोक्ष की अवस्था उपलब्ध होती है।
भीड़ के प्रति जागना है कि मैं जो भी कर रहा हूं वह भीड़ को देख कर तो नहीं कर रहा हूं?
आप मंदिर चले जा रहे हैं सुबह ही उठ कर, भागते हुए, राम-राम जपते हुए। सुबह की सर्दी है, स्नान कर लिया है, भागते चले जा रहे हैं। सोचते हैं कि मंदिर जा रहा हूं। जरा जाग कर देखना कि कहीं सड़क के लोग देख लें कि मैं आदमी धार्मिक हूं, इसलिए तो मंदिर नहीं जा रहे हैं!
कौन मंदिर जाता है? भीड़ देख ले कि यह आदमी मंदिर जाता है, इसलिए आदमी मंदिर जाता है।
किसको प्रयोजन है दान देने से? अगर एक आदमी भीख मांगता है सड़क पर, तो आपको पता है, भिखारी अकेले में किसी से भीख मांगने में झिझकता है, चार-छह आदमियों के सामने जल्दी हाथ फैला कर खड़ा हो जाता है। क्योंकि उसको पता है कि इन पांच आदमियों को देखते हुए यह आदमी इनकार नहीं कर सकेगा। क्योंकि ख्याल रखेगा कि पांच आदमी क्या सोचेंगे? कि बड़ा कठोर है, दस पैसे नहीं छूटे! तो भिखमंगा भीड़ में जल्दी से पीछा पकड़ लेता है। और दस आदमियों को देख कर आपको दस पैसे देने पड़ते हैं। वे दस पैसे आप भिखारी को नहीं दे रहे हैं, वे दस पैसे आप इंश्योरेंस कर रहे हैं अपनी इज्जत का दस आदमियों में। उन दस पैसों का आप क्रेडिट बना रहे हैं, इज्जत बना रहे हैं बाजार में।
लेकिन आपको ख्याल भी नहीं होगा। आप घर लौट कर कहेंगे कि बड़ा दान किया,
आज एक आदमी को दस पैसे दिए! लेकिन थोड़ा भीतर जाग कर देखना, तो पता चलेगाः जिसको दिए उसको तो दिए ही नहीं, उसको तो भीतर से गाली निकल रही थी कि यह दुष्ट कहां से आ गया! दिए उनको, जो साथ खड़े थे।
भीड़ सब तरफ से पकड़े हुए है।
एक मंदिर बनाता था एक आदमी। एक गांव में मैंने देखा, एक मंदिर बन रहा है; भगवान का मंदिर बन रहा है।
कितने भगवान के मंदिर बनते चले जाते हैं!
नया मंदिर बन रहा था। उस गांव में वैसे ही बहुत मंदिर थे! आदमियों को रहने की जगह नहीं है, भगवान के लिए मंदिर बनते चले जाते हैं! और भगवान का कोई पता नहीं है कि वे रहने को कब आएंगे कि नहीं आएंगे; आएंगे भी कि नहीं आएंगे, उनका कुछ पता नहीं है।
नया मंदिर बनने लगा तो मैंने उस मंदिर को बनाने वाले कारीगरों से पूछा कि बात क्या है? बहुत मंदिर हैं गांव में, भगवान का कहीं पता नहीं चलता। और एक किसलिए बना रहे हो?
बूढ़ा था कारीगर, अस्सी साल उसकी उम्र रही होगी, बामुश्किल मूर्ति खोद रहा था। उसने कहा कि आपको शायद पता नहीं कि मंदिर भगवान के लिए नहीं बनाए जाते।
मैंने कहा, बड़े नास्तिक मालूम होते हो। मंदिर भगवान के लिए नहीं बनाए जाते तो और किसके लिए बनाए जाते हैं?
उस बूढ़े ने कहा, पहले मैं भी यही सोचता था। लेकिन जिंदगी भर मंदिर बनाने के बाद इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि भगवान के लिए इस जमीन पर एक भी मंदिर कभी नहीं बनाया गया।
मैंने कहा, मतलब क्या है तुम्हारा?
उस बूढ़े ने मेरा हाथ पकड़ा और कहा कि भीतर आओ।
और बहुत कारीगर काम करते थे। लाखों रुपये का काम था। क्योंकि कोई साधारण आदमी मंदिर नहीं बना रहा था। सबसे पीछे, जहां पत्थरों को खोदते कारीगर थे, उस बूढ़े ने ले जाकर मुझे खड़ा कर दिया एक पत्थर के सामने और कहा कि इसलिए मंदिर बन रहा है!
उस पत्थर पर मंदिर को बनाने वाले का नाम स्वर्ण-अक्षरों में खोदा जा रहा है।
उस बूढ़े ने कहा, सब मंदिर इस पत्थर के लिए बनते हैं। असली चीज यह पत्थर है, जिस पर नाम लिखा रहता है कि किसने बनवाया। मंदिर तो बहाना है इस पत्थर

को लगाने का। यह पत्थर असली चीज है, इसकी वजह से मंदिर भी बनाना पड़ता है। मंदिर तो बहुत महंगा पड़ता है; लेकिन इस पत्थर को लगाना है तो क्या करें, मंदिर बनाना पड़ता है। मंदिर पत्थर लगाने के लिए बनते हैं, जिन पर खुदा है कि किसने बनाया!
लेकिन मंदिर बनाने वाले को शायद होश नहीं होगा कि यह मंदिर भीड़ के चरणों में बनाया जा रहा है, भगवान के चरणों में नहीं। इसीलिए तो मंदिर हिंदू का होता है, मुसलमान का होता है, जैन का होता है। मंदिर भगवान का कहां होता है?
भीड़ से सावधान होने का मतलब यह है कि भीतर जाग कर देखना चित्त की वृत्तियों कोः कि कहीं भीड़ तो मेरा निर्माण नहीं करती है? चौबीस घंटे भीड़ तो मुझे मोल्ड नहीं करती है? कहीं भीड़ के सांचे में तो मुझे नहीं ढाला जा रहा है? क्योंकि ध्यान रहे, भीड़ के सांचे में कभी किसी आत्मा का निर्माण नहीं होता। भीड़ के सांचे में मुर्दा आदमी ढाले जाते हैं और पत्थर हो जाते हैं। जिनको आत्मा को पाना है जीवंत, वे भीड़ के सांचे को तोड़ कर ऊपर उठने की कोशिश करते हैं।
लेकिन कुछ और करने की जरूरत नहीं है, सिर्फ जागने की जरूरत है, कि चित्त की वृत्तियों को मैं जाग कर देखता रहूं कि भीड़ मुझे पकड़ तो नहीं रही है? और बड़े मजे की बात है, अगर कोई जाग कर देखता रहे तो भीड़ की पकड़ बंद हो जाती है। और इतना हलकापन, इतनी वेटलेसनेस मालूम होती है, क्योंकि वजन भीड़ का है हमारे सिरों पर।
हम दिखाई पड़ रहे हैं कि हम अकेले खड़े हैं, हमारे सिर पर कोई भी नहीं है। जरा गौर से देखना! किसी के सिर पर गांधी बैठे हैं, किसी के सिर पर मोहम्मद बैठे हैं, किसी के सिर पर महावीर बैठे हैं। और अकेले नहीं बैठे हैं, अपने चेले-चांटियों के साथ बैठे हुए हैं! और एक-दो दिन से नहीं बैठे हुए हैं, हजारों-लाखों साल से बैठे हुए हैं! सिर भारी हो गया है, कतार लग गई है एवरेस्ट की, आकाश को छू रही है, इतने लोग ऊपर बैठे हुए हैं।
इन सबको उतार देने की जरूरत है। अगर अपने को पाना है, तो अपने सिर से सबको उतार देने की जरूरत है। कोई हक नहीं है किसी को कि किसी की आत्मा पर पत्थर होकर बैठ जाए।
लेकिन वे बेचारे नहीं बैठे हैं, आप बिठाए हुए हैं। उनका कोई कसूर नहीं है। वे तो घबड़ा गए होंगे कि यह आदमी कब तक ढोता रहेगा! हमारे प्राण निकले जा रहे हैं, कितने दिन से बिठाए हुए है, हमको छोड़ता ही नहीं!
आप ही बिठाए हुए हैं। जागते ही छूट जाएगा यह मोह। सिर हलका हो जाएगा;
मन हलका हो जाएगा। उड़ने की तैयारी शुरू हो जाएगी। पंख खुल सकेंगे।
और तीसरी बातः जागना है दमन के प्रति।
लोग सोचते हैं कि दमन छोड़ देंगे तो भोग शुरू हो जाएगा। लोग सोचते हैं, अगर क्रोध नहीं दबाया तो क्रोध हो जाएगा, और झंझट हो जाएगी। अगर मालिक की गर्दन पकड़ लेंगे, वह और दिक्कत की बात है। उससे पत्नी की गर्दन पकड़ना ज्यादा कनवीनिएंट, ज्यादा सुविधापूर्ण है। यह झंझट की बात हो जाएगी, इसके आर्थिक दुष्परिणाम हो जाएंगे--अगर मालिक की गर्दन पकड़ेंगे। और मालिक की गर्दन पकड़ने के लिए पत्नी भी कहेगी कि मत पकड़ना; उससे तो मेरी ही पकड़ लेना। क्योंकि मालिक की गर्दन पकड़ी तो बच्चे का क्या होगा? पत्नी का क्या होगा? सब दिक्कत में पड़ जाएंगे। तुम तो मेरी ही पकड़ लेना। पत्नी भी यही कहेगी कि यही ज्यादा सुविधापूर्ण, समझदारी का है कि मालिक को छोड़ कर, आकर मुझ पर टूट पड़ना।
नहीं, मैं आपसे कहना चाहता हूंः क्रोध को दबाने की जरूरत नहीं है; क्रोध को भी देखने, जानने और जागने की जरूरत है। जब किसी के प्रति मन में क्रोध पकड़े, तो जाग कर देखना कि क्रोध पकड़ रहा है। होश से भर जाना कि क्रोध आ रहा है। देखना अपने भीतर कि क्रोध का धुआं उठ रहा है। क्रोध क्या-क्या कर रहा है, भीतर देखना। और एक अदभुत अनुभव होगा जीवन में पहली बार--देखते ही क्रोध विलीन हो जाता है; न दबाना पड़ता है, न करना पड़ता है।
आज तक दुनिया में कोई आदमी जाग कर क्रोध नहीं कर पाया है।

बुद्ध एक गांव से गुजरते थे। कुछ लोगों ने भीड़ लगा ली और बहुत गालियां दीं बुद्ध को।
अच्छे लोगों को हमने सिवाय गालियां देने के आज तक कुछ भी नहीं किया। हां, जब वे मर जाते हैं तो पूजा वगैरह भी करते हैं। लेकिन वह मरने के बाद की बात है। जिंदा बुद्ध को तो गाली देनी ही पड़ेगी। क्योंकि ऐसे लोग थोड़े डिस्टर्बिंग होते हैं; थोड़ी गड़बड़ कर देते हैं; नींद तोड़ देते हैं। तो गुस्सा आता है तो आदमी गाली देता है, कसूर भी क्या है!
उस गांव के लोगों ने घेर कर बुद्ध को बहुत गालियां दीं। बुद्ध ने उनसे कहा कि मित्रो, तुम्हारी बात अगर पूरी हो गई हो तो अब मैं जाऊं, मुझे दूसरे गांव जल्दी पहुंचना है।
वे लोग कहने लगे, बात? हम गालियां दे रहे हैं सीधी-सीधी, समझ नहीं आतीं आपको! क्या बुद्धि बिल्कुल खो दी है? सीधी-सीधी गालियां दे रहे हैं, बात नहीं कर रहे हैं।
बुद्ध ने कहा, तुम गालियां दे रहे हो, वह मैं समझ गया। लेकिन मैंने गालियां लेना बंद कर दिया है। तुम्हारे देने से क्या होगा जब तक मैं लूं न? और मैं ले नहीं सकता। क्योंकि जब से जाग गया हूं, तब से गाली लेना असंभव हो गया है। जागते में कोई गलत चीज कैसे ले सकता है?
आप बेहोशी में चलते हों तो पैर में कांटा गड़ जाता है; सड़क को देख कर चलते हों तो कैसे कांटा गड़ सकता है! गलती से आदमी दीवाल से टकरा सकता है; लेकिन आंखें खुली हों तो दरवाजे से निकलता है।
बुद्ध ने कहा कि मैं आंखें खोल कर जब से जीने लगा हूं, जाग कर, तब से गालियां लेने का मन ही नहीं करता है। अब मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया। तुम्हें दस साल पहले आना चाहिए था। तुम जरा देर करके आए। दस साल पहले आते तो मजा आ जाता। तुमको मजा आ जाता, हमको तो बहुत तकलीफ होती। हमको तो अभी मजा आ रहा है। लेकिन तुम्हें बहुत मजा आ जाता; क्योंकि मैं भी दुगने वजन की गाली तुम्हें देता। लेकिन अब बड़ी मुश्किल है; होश से भरा हुआ आदमी गाली नहीं ले सकता। तो मैं जाऊं?
वे लोग बड़े हैरान हो गए।
बुद्ध ने कहा, जाते वक्त एक बात और तुमसे कह दूं। पिछले गांव में कुछ लोग मिठाइयां लेकर आए थे। मैंने कहा कि मेरा पेट भरा है। वह भी जागा हुआ था, इसलिए कह सका; क्योंकि सोया हुआ आदमी मिठाइयां देख कर भूल जाता है कि पेट भरा है।
पता है आपको? बेहोश आदमी भूख देख कर नहीं खाता; बेहोश आदमी चीजें देख
कर खाता है। होश भरा आदमी पेट की भूख देख कर खाता है। बात खतम हो गई। बुद्ध ने कहा, मेरा पेट भरा था। वह भी होश की वजह से। दस साल पहले वे भी
आए होते, तो उनकी थालियां उन्हें वापस न ले जानी पड़तीं। मैं उनको जरूर खा लेता। लेकिन जब से होश आ गया है, जाग कर देखता रहता हूं। तो गलती करनी बहुत मुश्किल हो गई है। वे बेचारे थालियां वापस ले गए। तो मैं तुमसे पूछता हूं, दोस्तो, उन्होंने उन मिठाइयों का क्या किया होगा?
उस गाली देने वाली भीड़ में से एक आदमी ने कहा, क्या किया होगा? घर में जाकर मिठाइयां बांट दी होंगी।
बुद्ध ने कहा, यही मुझे चिंता हो रही है कि तुम क्या करोगे? तुम गालियों की थालियां लेकर आए हो, और मैं लेता नहीं। अब तुम इन गालियों का क्या करोगे? किसको बांटोगे?
बुद्ध कहने लगे, मुझे बड़ी दया आती है तुम पर। अब तुम करोगे क्या? इन गालियों का क्या करोगे? मैं लेता नहीं; मैं ले सकता नहीं। चाहूं भी तो नहीं ले सकता, मुश्किल में पड़ गया हूं, जाग जो गया हूं।
कोई आदमी जाग कर क्रोध नहीं कर सकता।
दमन निद्रा में चलता है, जाग्रत आदमी को दमन की कोई जरूरत नहीं है।
देखें एक प्रयोग। एक आदमी मेरे पास आया कुछ ही समय हुआ। उसने कहा, मुझे बहुत क्रोध आता है। आप कहते हैं, जागो! जागो! मुझसे नहीं होता यह जागना-वागना। जब आता है, तब आ ही जाता है। फिर पीछे जागते हैं जब सब मामला ही खतम हो जाता है। फिर कोई फायदा नहीं होता।

तो मैंने एक कागज पर उसको लिख कर दे दिया कि इस कागज पर लिखा हुआ है--"अब मुझे क्रोध आ रहा है"--बड़े-बड़े अक्षरों में। इसको खीसे में रख लो, और जब आए तो इसको निकाल कर एक दफे पढ़ कर खीसे में रख लेना, और जो तुम्हें समझ में आए सो करना।
वह आदमी पंद्रह दिन बाद आया और कहने लगा, बड़ी हैरानी की बात है। यह कागज में कैसा मंत्र है! क्योंकि जब क्रोध आता है, हाथ ले गए खीसे की तरफ कि क्रोध की जान निकल जाती है! वह जैसे ही यह ख्याल आया कि आ रहा है--कि भीतर कोई चीज जग जाती है और वह नहीं आता।
मैंने कहा, बस इतना ही थोड़ी सी समझ की जरूरत है जीवन के प्रति।
जीवन छोटे से राजों पर निर्भर होता है। और बड़े से बड़ा राज यह है कि सोया हुआ आदमी भटकता चला जाता है चक्कर में, जागा हुआ आदमी चक्कर के बाहर हो जाता है।
जागने की कोशिश ही धर्म की प्रक्रिया है।
जागने का मार्ग ही योग है।
जागने की विधि का नाम ही ध्यान है।
जागना ही एकमात्र प्रार्थना है।
जागना ही एकमात्र उपासना है।
जो जागते हैं, वे प्रभु के मंदिर को उपलब्ध हो जाते हैं।
क्योंकि पहले वे जागते हैं, तो वृत्तियां, व्यर्थताएं, कचरा, कूड़ा- करकट चित्त से गिरना शुरू हो जाता है। धीरे-धीरे चित्त निर्मल हो जाता है जागे हुए आदमी का। और जब चित्त निर्मल हो जाता है, तो चित्त दर्पण बन जाता है। जैसे झील निर्मल हो, तो चांद-तारों की प्रतिछवि बनती है। और आकाश में भी चांद-तारे उतने सुंदर नहीं मालूम पड़ते, जितने झील की छाती पर चमक कर मालूम पड़ते हैं। जब चित्त निर्मल हो जाता है जागे हुए आदमी का, तो उस चित्त की निर्मलता में परमात्मा की छवि दिखाई पड़नी शुरू हो जाती है। फिर वह निर्मल आदमी कहीं भी जाए--फूल में भी उसे परमात्मा दिखता है, पत्थर में भी, मनुष्यों में भी, पक्षियों में भी, पदार्थ में भी--उसके लिए जीवन परमात्मा हो जाता है।
जीवन की क्रांति का अर्थ हैः जागरण की क्रांति।
इन तीन दिनों में इस जागरण के बिंदु को समझाने के लिए मैंने ये सारी बातें की हैं। लेकिन मैं कहूं, इससे जागरण समझ में नहीं आ सकता है। वह तो आप जागेंगे तो समझ में आ सकता है। और कोई दूसरा आपको नहीं जगा सकता, आप ही-- बस आप ही--अपने को जगा सकते हैं।
तो देखें अपने भीतर और एक-एक चीज के प्रति जागना शुरू करें। जैसे-जैसे जागरण बढ़ेगा, वैसे-वैसे जीवन बढ़ेगा, मृत्यु कम होगी। जिस दिन जागरण पूर्ण होगा, उस दिन मृत्यु विलीन हो जाती है; जैसे थी ही नहीं। जैसे कोई अंधेरे कमरे में एक आदमी दीया लेकर चला जाए। दीया लेकर पहुंचता है कि अंधेरा खो जाता है; जैसे था ही नहीं। ऐसे ही जो आदमी जागरण का दीया लेकर भीतर जाता है, मृत्यु खो जाती है, दुख खो जाता है, अशांति खो जाती है। अमृत--वह जिसका कोई अंत नहीं; वह जिसका कोई प्रारंभ नहीं; वह जो असीम है; वह जो प्रभु है--उसके मंदिर में प्रवेश हो जाता है।
अंत में यही प्रार्थना करता हूं कि उस मंदिर में सबका प्रवेश हो सके। लेकिन किसी की कृपा से नहीं होगा यह; किसी के प्रसाद से, आशीर्वाद से नहीं होगा। अपने ही श्रम, अपने ही संकल्प, अपनी ही साधना से होता है। जो जागते हैं, वे पाते हैं। जो सोए रह जाते हैं, वे खो देते हैं।
मेरी बातों को इन चार दिनों में इतने प्रेम और शांति से सुना, उस सबके लिए बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।